सैद्धांतिक चर्चा

★

लेख नं० (१)

(लौकिक व्यवहारी जनके अभिप्राय अपेक्षा सोपक्रम आयुके अंतको अकाल मृत्यु या अक्रमिक कहनेमें आते हैं किन्तु सर्वज्ञके ज्ञान अपेक्षा तथा ज्ञेय अपेक्षासे वास्तविकता देखें तो सोपक्रम आयुका अंत भी क्रम निश्चित क्रमवद्ध ही है अक्रम नहीं है इस विषयमें हमारे माननीय श्री रामजीभाई दोशीने निम्नप्रकार शास्त्राधारसे विस्तृत वर्णन किये हैं)

[यह लेखमाला जैन शिक्षण कक्षावालोंको बहुत पसंद आई और आत्मधर्मके अक भी बिक गये अत फिरसे २५०० कापी छपवाई है ।]

—ब्र० गुलावचन्द जैन

प्रश्न १ (अ) सर्वज्ञ अक्रमिक पर्यायरूप अकाल मृत्युको उसी रूपमे ही जानता है या 'योग्य काल मृत्यु'के रूपमे जानता है ?

उत्तर —इस प्रश्नका उत्तर देनेसे पहले 'अक्रमिक पर्याय" व "अकाल मृत्यु" सम्बन्धी विवेचनकी जरूरत है, इसके बाद इस प्रश्नका उत्तर देनेमे आयेगा ।

अक्रमिक पर्याय सिद्धान्त वचन नही है—दिगम्बर जैन शास्त्रोमे प्राकृत, सस्कृत और हिन्दीमे 'अक्रमिक पर्याय' ऐसा कोई सिद्धान्तका वचन नही है । किसी भी जगह ऐसा शब्द प्रयोग करनेमे नही आया तथा चारो अनुयोगोमे "अक्रमिक पर्याय"का कही भी नाम निशान नही है । उत्पादरूप पर्यायको शास्त्रोमे **'क्रमरूप,' क्रमवर्ती, क्रम-भावी, क्रमअनेकान्त, क्रम अनुपाति, क्रम नियमित** आदि नामोसे सम्बोधित किया है ।

शास्त्राधार निम्नप्रकार है—पर्यायको क्रमवर्ति–क्रमरूप कहा है अक्रमिक नहीं।

१—श्री समयसारजी गाथा २ पृष्ठ ६ में टीकामें कहा है कि "वह क्रमरूप व अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेकभाव जिसका स्वभाव होनेसे जिसने गुण और पर्यायोंको अंगीकार किया है ऐसा है (पर्याय क्रमवर्ती होती है और गुण–सहवर्ती होता है, सहवर्तीको अक्रमवर्ती भी कहते हैं)"

देखिये यहाँ पर 'अक्रमिक पर्याय' नाम नहीं आया है किन्तु क्रमरूप' या 'क्रमवर्ती' ऐसा नाम आया है। गुणको अक्रम नामसे कहा है।

२—श्री समयसारजी मोक्ष अधिकार (गाथा २९४ पृष्ठ ४१८ की टीकामें कहा है कि "वह (चैतन्य) प्रवर्तमान होता हुआ जिस जिसको व्याप्त होकर प्रवर्तता है और निवर्तमान होता हुआ जिस जिस पर्यायको ग्रहण करके निवर्तता है वे समस्त सहवर्ती या क्रमवर्ती पर्यायें आत्मा हैं, इसप्रकार लक्षित करना'

देखिये—इसमें भी कहीं पर्यायका 'अक्रमिक' ऐसा नाम नहीं है, किन्तु पर्यायको क्रमवर्ती कहा और गुणको पर्याय कहकर सहवर्ती कहा।

३—श्री समयसारजी कलश २४८ की टीकामें पृष्ठ ५८२ में लिखा है कि "सहभूत (साथ ही) प्रवर्तमान और क्रमशः प्रवर्तमान अनन्त चैतन्य अंशोंके समुदायरूप अविभाग द्रव्यके द्वारा एकत्व है और अविभाग एक द्रव्यमें व्याप्त सहभूत प्रवर्तमान तथा क्रमशः प्रवर्तमान अनन्तचैतन्य अंशरूप पर्यायोंके द्वारा अनेकत्व है।"

देखिये यहाँ पर भी पर्यायको क्रमशः प्रवर्तमान कहा है, परन्तु अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है।

४—श्री समयसारजीके परिशिष्ट पृष्ठ ५८६–८७ शक्तियोंका वर्णन करते हुये कहा है कि "क्रमवर्ती रूप और अक्रमवर्ती रूप वर्तन

जिसका लक्षण है ऐसी उत्पाद व्यय ध्रुवत्व शक्ति," **देखिये**—यहाँ पर भी पर्यायको 'क्रमवर्ती' कहा है। उत्पाद व्ययको **क्रमवर्ती** कहा है और ध्रुव (गुण) को "**अक्रमवर्ती**" कहा है परन्तु उत्पाद व्ययरूप पर्यायको "**अक्रमिक पर्याय**" नही कहा है।

पर्यायें क्रमवर्ती, क्रमरूप क्रम कहा है **अक्रमिक** नही।

५—श्री समयसारजी सर्व विशुद्धज्ञान स्याद्वाद अधिकार पृष्ठ ५८७ मे कहा है कि "**क्रमरूप और अक्रमरूप** प्रवर्तमान, तद् अविनाभूत अनन्त धर्म समूह जो कुछ जितना लक्षित होता है वह सब वास्तवमे एक आत्मा है।" देखिये यहाँ पर भी पर्यायको **क्रमरूप प्रवर्तमान और गुणको अक्रमरूप प्रवर्तमान**, परन्तु उत्पादरूप पर्यायको '**अक्रमिक पर्याय**' नही कहा।

कही पर अक्रमरूपका अर्थ युगपद कहा है कारण कि—सब गुण एक साथ वर्तते हैं।

६—श्री समयसारजी सर्व विशुद्धज्ञान स्याद्वाद अधिकार पृष्ठ ५८७ मे लिखा है कि "जिसमे **क्रम और अक्रमसे** प्रवर्तमान अनन्त धर्म है।" **देखिये** इसमे भी पर्यायको क्रम और गुणको अक्रम कहा है, परन्तु **पर्यायको 'अक्रमिक' पर्याय नहीं कहा।**

७—श्री समयसारजी सर्व विशुद्धि ज्ञान स्याद्वाद अधिकारमे पृष्ठ ५९२ कलश २६४ मे लिखा है कि—**क्रमरूप** और **अक्रमरूपसे** वर्तमान विवर्त्तसे (रूपान्तरसे, परिणमनसे) अनेक प्रकारका द्रव्य पर्यायमय चैतन्य इस लोकमे वस्तु है। **देखिये** यहाँ पर भी पर्यायको **क्रमरूप** और गुणको अक्रमरूप लिखा है परन्तु पर्यायको "**अक्रमिक पर्याय**" नही लिखा।

पर्यायों क्रम नियमित

८—श्री समयसारजी सर्व विशुद्धिज्ञान अधिकार गाथा ३०८ से

लेकर ३११ तक पृष्ठ ४४४ मे बताया है कि—आत्माका अकर्तृत्व दृष्टान्त पूर्वक कहते हैं और उसकी टीकामे परिणामोके लिये 'क्रम नियमित' शब्द सस्कृतमे दो बार आया है। देखिये इसमे कही भी पर्यायको 'अक्रमिक पर्याय' नही कहा।

श्री समयसारजीमे कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्यजीने किसी भी जगह पर उत्पादरूप पर्यायको 'अक्रमिक पर्याय' नही कहा, परन्तु सर्व जगह पर उसको 'क्रमरूप पर्याय' ही कहा है।

९—श्री पचास्तिकायमे गाथा ८ पृष्ठ २० की टीका मे उत्पाद व्ययरूप पर्यायको "क्रमवर्ती" "क्रमभावी" कहा है, देखिये यहांपर भी पर्यायको 'अक्रमिक पर्याय' नही कहा है।

पर्यायोको क्रमवर्ती क्रमभावी क्रमअनेकान्त कहा, अक्रमिक नही।

१०—श्री प्रवचनसार (जयसेनाचार्य कृत टीका गाथा १४१ पृष्ठ २०० पर "प्रति समय वर्तनेवाली पूर्व उत्तर पर्याय मोतीके हारकी भाँति सतान ऊर्ध्व प्रचयको 'क्रम अनेकान्त'" कहनेमे आया है। जैसे मोतीके हारका एक एक दाना अपने अपने स्थानमे ही रहता है आगे–पीछे नही होता, इसीप्रकार पर्याय भी अपने अपने स्वकालमे ही उत्पन्न होती है, परकाल अर्थात् आगे या पीछे उत्पन्न नही होती ऐसा अनेकान्त है। देखिये यहाँ पर भी पर्यायोको 'क्रम अनेकान्त' कहा परन्तु 'अक्रमिक–पर्याय' नही कहा।

श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत टीकामे (श्री प्रवचनसार गाथा १४१ मे) तिर्यक् प्रचय और ऊर्ध्व प्रचयका विषय आया है उसकी व्याख्या नीचेके शब्दोमे है।

"प्रदेशोका समूह तिर्यक् प्रचय और समय विशिष्ट वृत्तियोंका समूह ऊर्ध्व प्रचय है।

ऊर्ध्वप्रचय तो सर्वद्रव्योंके अनिवार्य ही है, क्योंकि द्रव्यकी वृत्ति तीन कोटियोंको (भूत-वर्तमान और भविष्य–ऐसे तीनों कालोंको)

स्पर्श करती है, इसलिये अंशोसे युक्त है। परन्तु इतना अन्तर है कि समय विशिष्ट वृत्तियोका प्रचय (कालको छोडकर) शेष द्रव्यो का ऊर्ध्व प्रचय है, और समयोका प्रचय काल द्रव्यका ऊर्ध्व प्रचय है, क्योकि शेष द्रव्योकी वृत्ति समयसे अर्थान्तरभूत (अन्य) है इसलिये वह वृत्ति समय विशिष्ट है, और काल द्रव्यकी वृत्ति तो स्वत समयभूत है, इसलिये वह समय विशिष्ट नही है।"

श्री जयसेनाचार्य ऊर्ध्व प्रचयकी व्याख्या नीचे लिखे शब्दोमे लिखते है, 'प्रति समयवर्ती पूर्व उत्तर पर्यायोंका मुक्ताफल मालाके समान सन्तान ऊर्ध्व प्रचय है. उसको ऊर्ध्वसामान्य, आयतसामान्य, क्रम अनेकान्त ऐसा भी कहनेमे आता है वह सर्व द्रव्योमे होता है।

इस आधारमे यह सिद्ध होता है कि 'अकाल मृत्यु' भी मुक्ताफलके समान अपने स्वकालमे ही होती है। जो उसका काल अनिश्चित होवे तो मृत्यु आगे-पीछे होनेसे जीव द्रव्यका, पुद्गल द्रव्यका ऊर्ध्व प्रचय भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनोको स्पर्श न होनेसे जीव व पुद्गलका ऊर्ध्व प्रचय ही सिद्ध नही होगा।

इसलिये श्री प्रवचनसार गाथा ९३ मे पदार्थका जो स्वरूप कहा है उसमेसे आयत सामान्य समुदायात्मक द्रव्य सिद्ध न होनेसे जीव और पुद्गल द्रव्य सिद्ध नही होते। एक भी पर्यायको निश्चयनयसे असमय वाली (अनिश्चित आगे-पीछे, उल्टी-सीधी) माने तो वह जीव ऊर्ध्व प्रचयको नही मानता।

छह द्रव्योमे कोई भी द्रव्य एक समय भी ऊर्ध्व प्रचय विना रहता ही नही है, यदि ऊर्ध्व प्रचय न हो तो द्रव्य ही नही कहलायेगा, इसलिये किसी भी द्रव्यकी पर्याय उल्टी-सीधी माने तो उसने ऊर्ध्व प्रचयको नही माना।

अकाल मृत्यु भी जीवकी अशुद्ध पर्याय है वह भी उसके समयमे निश्चयनयसे नही होती ऐसा माननेवाला निश्चयनयको ही नही मानता

होनेसे वह ऊर्ध्व प्रचयको नही मानता, इसलिये वह सर्वज्ञदेवकी आज्ञा-से वाहर है ।

निरुपक्रम और सोपक्रम आयुवाले जीवके मरणका स्वरूप १—निश्चयनयसे व २—व्यवहारनयसे निम्नप्रकार है ।

१—निरुपक्रम आयुष्यवाला जीवका मरण निश्चयनयसे स्वकाल मरण है, व्यवहारनयसे उदय मरण है ।

२—सोपक्रम आयुवाले जीवका मरण निश्चयनयसे स्वकाल मरण है, व्यवहारनयसे उदीरणा मरण अथवा अकाल मरण है ।

उदय मरण और उदीरणा मरण ऐसे दो विभागके लिये देखिये—अर्थ प्रकाशिका अध्याय २ सूत्र ५३ की टीका ।

जो जीव अकाल मृत्युको नही मानते हैं, वे आयुकर्मके दो विभागो-को नही मानते इसलिये उनका वचन असत्य है, ऐसी मान्यतावाले जीव एकान्त निश्चयवादी होनेसे मिथ्यादृष्टि हैं, किंतु यह वात भी ध्यान-में रखनी चाहिये कि अकाल मृत्युको व्यवहारनयसे स्वीकार करनेपर वह मरण स्वकालमे नही हुआ, ऐसा नही है । जो जीव अकाल मृत्यु-को मानते हैं किन्तु निश्चयसे वह मरण अपने स्वकालमे नही हुआ है और उसका स्वसमय (जवतक वह मरण नही हुआ तवतक वह) अनिश्चित था ऐसा माननेवाला एकान्त व्यवहारनयको माननेवाला है अर्थात् व्यवहारनयको ही निश्चयनय मानता है, इसलिये वह भी मिथ्यादृष्टि ही है ।

अकाल मृत्यु सम्वन्धी जो निश्चय-व्यवहारका स्वरूप ऊपर कहा है, उसे एक साथ जानते है उसका ज्ञान प्रमाण होनेसे वह सम्यक् अने-कान्ती है । ऊपर कहे हुये दो नयोका स्वरूप यथार्थ जाननेवाला जव व्यवहारनयको गौण कर निश्चयनयको जानता है अथवा निश्चयनयको गौण कर व्यवहारनयको जानता है तव उसका ज्ञान सम्यक्नयरूप होनेसे वह सम्यक् एकान्ती है ।

प्रवाह क्रम

११—श्री प्रवचनसार टीका अमृतचन्द्राचार्य कृत गाथा ६६

क्रम दो प्रकारका कहा है १ विस्तार क्रम २ प्रवाह क्रम ।। विस्तारक्रम प्रदेशोको लागू पडता है व प्रवाहक्रम सूक्ष्म अशोरूप परिणामोको लागू पडता है। विस्तार क्रमका कारण प्रदेशोंका परस्पर व्यतिरेक है उसीप्रकार प्रवाहक्रमका कारण परिणामोका परस्पर व्यतिरेक है। जैसे आत्माके प्रदेशो इधर उधर होजावे ऐसा नही हो सक्ता उसीप्रकार पर्यायो आगे–पीछे हो जावे ऐसा नही हो सकता। अनादि अनन्त प्रवाहरूप पूर्व पर्यायका व्यय होकर अगली पर्याय स्वकालमे होती है।

१२—श्री प्रवचनसार ६६ वी गाथा पृष्ठ १२६ मे लिखा है कि "जिसने नित्यवृत्ति ग्रहण की है ऐसे रचित (परिणमित) होते हुये द्रव्यमें, अपने अपने अवसरोंमे प्रकाशित होते हुये समस्त परिणामोमे पीछे पीछेके अवसरो पर पीछे पीछेके परिणाम प्रगट होते हैं इसलिये और पहले पहलेके परिणाम नही प्रगट होते हैं इसलिये तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह उपस्थित होनेसे त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धिको प्राप्त होता है।"

पर्यायें अपने अपने अवसरोंमें

यहां परिणामको (उत्पादरूप पर्यायको) अपने अपने अवसर मे प्रगट होती है, आगे पीछे नही ऐसा स्पष्ट बताया है। **याद रखिये:**— इस गाथामे परिणाम शब्दका प्रयोग हुआ है और श्री समयसारजीमे पृष्ठ ४४२ गाथा ३०६ मे "जीवस्सा-जीवस्स दु जे परिणामा" अर्थात् "जीव अजीवका परिणाम" आया है। 'परिणाम' शब्दका अर्थ प्रवचनसारमे गाथा ६६ मे "अपने २ अवसरोमे होनेवाले परिणामो" ऐसा होता है। **देखिये**—यहां पर्यायोको (परिणामोको) प्रवाहक्रम कहा है और पर्याय अपने अपने अवसरमे होती है ऐसा कहा है, परन्तु आगे-

पर्याय न्यायशास्त्रमें क्रमबद्ध

१५—न्यायशास्त्र श्री परीक्षामुखमे—श्री माणिक्यनन्दी प्रणीत—अध्याय चौथा—सूत्र ८ पृष्ठ १८१ मे लिखा है कि "एकस्मिन् द्रव्ये क्रम भाविन परिणामा पर्याय आत्मनि हर्ष विषादादिवत्" ॥८॥ एक द्रव्य विषै **क्रमभावी परिणाम** है वह पर्याय है । देखिये यहाँपर भी 'क्रमभावी परिणामको पर्याय कहा है, किन्तु "**अक्रमिक पर्याय**" नही कहा है । दूसरी वात यह है कि—इस सूत्रको इसी ग्रन्थके तीसरे अध्यायका सूत्र १३ पृष्ठ ९५ के साथ पढनेसे मालूम होता है कि हरेक पर्याय अपने अपने कालमे होती है, आगे—पीछे कोई भी पर्याय नही होती है इस सिद्धान्तको समयसारमे "क्रम नियमित" परिणामो कहा है और इसको हिन्दी व गुजरातीमे "क्रमवद्ध पर्याय"के नामसे सबोधित किया गया है । (इस विषयमे "क्रमबद्ध पर्याय"का नीचे लिखनेमे आया है वह साथ साथ पढ लेना ।)

क्रमका अर्थ

१६—श्री भक्तामर स्तोत्र-काव्य ४१ मे "आक्रामतिक्रमयुगेन-निरस्तशक" यह पद आया है वहाँ क्रम—पग (पाद)के अर्थमे आया है । क्रमका अर्थ काल अपेक्षा एकके बाद एक और भावकी अपेक्षा दाहिना पैरके बाद बायाँ पैर, बायें पैरके बाद दाहिना पैर, इसप्रकार होता है । इससे यह निश्चित होता है कि 'क्रम' शव्दका अर्थ '**क्रम-नियमित**' होता है । किन्तु आगे—पीछे होनेवाला नही होता ।

नाटक समयसारमे वनारसीदासजी कहते हैं कि "दरव जो वस्तु, क्षेत्र, सत्ता भूमि, **काल चाल**, स्वभाव सहज मूल सकति बखानिये ।" इसमे भी सिद्ध होता है कि हरेक पर्याय अपने कालमे होती है और क्रम शव्दका अर्थ चाल (पाद विक्षेप) होता है ।

कितने ही लोग "क्रम" शव्दका अर्थ करनेमे बडी गडबडी करते हैं । 'क्रम' शव्दका अर्थ एक ही समयमे **एक ही पर्याय**, ऐसा अर्थ वे करते हैं । क्रमके ऐसे अर्थके लिये आगमका आधार वताते नही ।

'क्रम'का अर्थ 'पाद विक्षेप' होता है यह भान स्पष्ट है। एक ही समयमें एक ही पर्याय होती है यह मान्यता गलत है क्योंकि एक शुद्ध परमाणुकी स्पर्श गुणकी चार पर्यायोंमेंसे **दो पर्यायें एक साथ होती हैं,** शीत उष्णमेंसे एक और स्निग्ध रूक्षमेंसे एक ऐसी दो पर्यायें होती हैं, और सूक्ष्म स्कन्धमें भी हरेक परमाणुकी इसीप्रकार दो दो पर्यायें होती हैं, स्थूल स्कन्धोंमें स्पर्श गुणकी आठ पर्यायोंमेंसे चार होती हैं, शीत–उष्णमेंसे एक, रूखा चिकनामेंसे एक, कड़ा नरममेंसे एक, हल्का भारीमेंसे एक—**इसप्रकार एक समयमें चार पर्यायें होती हैं।**

ज्ञान गुणकी सम्यक् दशामें पाँच पर्यायें होती हैं, उनमेंसे किसीको सुमति, सुश्रुत, सुअवधि, मनःपर्ययज्ञान ऐसे चार ज्ञानका उघाड एक ही साथ होता है। किसीको दो का, किसीको तीनका और केवलज्ञान हो तो एकका। छद्मस्थका उपयोग दर्शनरूप होवे तो ज्ञानोपयोग न होने पर भी जितने प्रकारके ज्ञानका विकास है उतने प्रकारकी पर्यायोंका एक समयमें लब्धिरूप परिणमन होता है, इसीप्रकार दर्शनगुणकी एक समयमें अनेक पर्यायोंकी विधि यथासंभव लागू पडती है।

चारित्रगुणकी अनेक प्रकारकी विकारी पर्यायें एक साथ होती हैं जैसे—क्रोध, मान, माया, लोभमेंसे एक, नोकषायमेंसे उनके अनुकूल विकारी पर्यायें एक समयमें चारित्र गुणकी भी होती हैं, इसलिये एक समयमें एक गुणको **एक ही पर्याय** होती है यह मान्यता गलत है।

श्री प्रवचनसारजी पृष्ठ ८० में लिखा है कि, "एक समयमात्रकी मर्यादावाला काल परिमाण होनेसे परस्पर अप्रवृत्त अन्वय व्यतिरेक वे पर्यायें हैं। "इसलिये उत्पत्तिरूप पर्यायका एक समयका ही काल है दो समय स्थाई कोई भी पर्याय नहीं है। ऐसा अनेकान्तसे सिद्ध होता है।

क्रमवर्तीका अर्थ

१७—श्री पंचाध्यायी प्रथम भाग गाथा १६७ में क्रमका अर्थ

और गाथा १६८ मे क्रमवर्तीका अर्थ दिया गया है। गाथा १६७ यहां **पगसे गमन करनेरूप अर्थमें प्रसिद्ध** क्रम एक धातु है। इस धातुका पादविक्षेपरूप अपने अर्थको उल्लघन न करनेसे, **जो क्रमण करता है वह क्रम है** ऐसा सिद्ध होता है।" गाथा १६८ मे जिस कारणसे **पर्यायें** यह क्रमके साथ रहती हैं अथवा वह, **क्रमरूपसे भवनशील है अथवा क्रम ही है वर्तनेवाला जिसका** यह ही अर्थसे क्रमवर्ती है।"

"पर्यायें क्रमबद्ध"

१८—देखिये यह दो गाथा स्पष्टरूपसे दर्शाती हैं कि उत्पादरूप पर्यायको क्रमरूप कहो वा क्रमवर्ती कहो परन्तु उसका अर्थ एक ही होता है कि सब पर्याय पादविक्षेपकी तरह **क्रमबद्ध** ही होती हैं, क्रमसे वर्तना ऐसा उसका स्वभाव है, परन्तु किसी भी पर्यायका स्वभाव अक्रम अर्थात् आगे पीछे होनेका है ही नही यह उत्पादरूप पर्यायका अर्थ है।

श्री प्रवचनसारमे गाथा ५५ मे पर्यायको "पदे पदे" ऐसे शब्द द्वारा सम्बोधन किया है प्रवचनसार गाथा १३३ मे "प्रतिपदम" इस शब्द द्वारा पर्यायको सम्बोधित किया है, **इससे भी सिद्ध** होता है कि पर्यायका दूसरा नाम पग, काल—चाल, और पाद होता है, और हरेक पर्याय नियमितरूपसे **अपने अपने कालमें होती है** किन्तु आगे पीछे नहीं होती।

पर्यायमाला और क्रमबद्ध एकार्थ है

प्रवचनसार गाथा २३ मे टीकामे लिखा है कि "ज्ञेय तो लोक और अलोकके विभागसे विभक्त अनन्त-पर्याय-मालासे आलिंगित स्वरूपसे सूचित (प्रगट, ज्ञात) नाशवान दिखाई देता हुआ भी ध्रुव ऐसा षट्द्रव्य समूह अर्थात् सब कुछ है।"

श्री प्रवचनसार गाथा ९९ टीका तथा गाथा १०७ मे "प्रति समयवर्ती पूर्व उत्तर पर्यायोने" गाथा २३ मे "पर्यायमाला" गाथा

१०७ मे पर्यायोका "मोतीकी माला" गाथा ९९ मे "मोतीका हार" गाथा १०७ की टीकामे जयसेनाचार्यने मोतीके हारको भाँति" गाथा २०० मे "मोतीकी माला" के रूपमे सम्बोधित किया है, जिससे सिद्ध होता है कि हरेक समयकी हरेक गुणकी हरेक पर्याय 'क्रमबद्ध' होती है, आगे पीछे नही होती, इसलिये कोई भी पर्याय "अक्रमिक" है ऐसा मानना संशयवाद है यथार्थ नहीं है ।

क्रम और अक्रमका अनेकान्त

श्री समयसार सर्व विशुद्धि ज्ञान अधिकार परिशिष्ट पृष्ठ ५९४ मे कहा है कि, "फिर उसीमे नित्य मस्ती करते हुये (लीन रहते हुये) वे मुमुक्षु जो कि स्वत. ही क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेकान्त-की (अनेक धर्मकी) मूर्तियाँ हैं वे साधक भावसे उत्पन्न होनेवाली परम प्रकर्षकी कोटीरूप सिद्धि भावके भाजन होते हैं ।"

(अनेक अन्त अर्थात् अनेकान्त । पर्यायको क्रमरूप और गुण-को अक्रमरूप कहकर अनेकान्त बताया है ।)

श्री समयसार सर्व वि० ज्ञा० अधिकार परिशिष्ट पृष्ठ ५९६ मे लिखा है कि "क्रमभावी पर्यायदृष्टिसे देखनेपर क्षणभगुर दिखाई देती है, और सहभावी गुणदृष्टिसे देखनेपर ध्रुव
ऐसा द्रव्य पर्यायात्मक अनन्त धर्मोवाला वस्तुका स्वभाव है ।" यहाँ पर्यायको क्रमभावी और गुणोको सहभावी कहकर अनेकांत बताया है । तथा पूर्वमें कहे हुये न० ४-५-६-७ में क्रम और अक्रमका अनेकान्त आया है । वहाँ सब जगह पर पर्यायको क्रम और गुणको अक्रम ऐसा अनेकान्त कहा है किन्तु उत्पाद व्ययरूप पर्यायको अक्रमिक नही कहा है ।

सम्यक् और मिथ्या अनेकान्त

श्री प्रवचनसार गाथा २३५ में इसीप्रकारका अनेकान्त आया है । किसी भी जगह उत्पादरूप पर्यायको क्रमिक और अक्रमिक ऐसा

कल्पित अनेकान्त नहीं आया है कल्पित अनेकान्त मानना यह मिथ्या अनेकान्त है, वस्तुमें जो धर्म न हो उस धर्मकी उस वस्तुमें कल्पना करके अनेकान्त कहना वह मिथ्या अनेकान्त है।

न्यायशास्त्रमे पर्यायोको कृतिका और रोहिणीका दृष्टान्तसे क्रम-बद्ध सिद्ध

क्रमभावीका अर्थ

१९—क्रमभावी अर्थात् क्रम-भाववाला, क्रमका अर्थ **परीक्षा मुख** अध्याय ३ सूत्र ८ पृष्ठ ९५ मे लिखा है "पूर्वोत्तर चारिणो' कार्य कार-णयोश्च क्रम भाव ॥१३॥ याका अर्थ—पूर्वोत्तर कहिये पहली पीछे होय ते कृतिका नक्षत्रका उदय अर रोहिणीका उदय पूर्वोत्तर चारी है तिनकै क्रमभाव 'नियम' है। बहुरि कार्य कारणके जैसे धूमकै अर अग्निकै कार्य-कारण भाव है तिनकै क्रमभाव नियम है ॥१३॥"

देखिये यहांपर क्रमभाव बतलानेके लिये कुदरतका दृष्टान्त देकर कहा है कि **कृतिका नक्षत्रका उदय और रोहिणी नक्षत्रका उदय पूर्व उत्तरवर्ती है,** उनका क्रमभाव नियम है। इस कुदरती दृष्टान्तसे यह सिद्धान्त फलित होता है कि हरेक पर्याय क्रमभावी होती है, **इस नियमको क्रमभावी कहो या क्रमबद्ध कहो एक ही बात है,** कृतिका नक्षत्रका उदय और रोहिणीका उदय अनादिसे अनन्तकालतक पूर्व-उत्तरचारी होता है, उसमे कोई भी फेरफार नही कर सकता, इस प्रकार पर्याय क्रमभावी होनेसे क्रमबद्ध है, आगे-पीछे करनेमे कोई भी समर्थ नही है।

क्रम अनेकान्त क्रमानुपाति और क्रमबद्ध सब एकार्थ है।

क्रम अनेकान्तका अर्थ —पूर्व उत्तर क्षणवर्ती पर्यायें क्रमसे है, **दूसरे किसी भी प्रकारसे नहीं होती,** इसलिये यह सिद्ध हुआ कि **पर्याय क्रमबद्ध होती है, 'अक्रमिक पर्याय' जगतमें कभी होती ही नहीं, आगममें किसी भी पर्यायको 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है।**

--क्रम-अनुपातिका-अर्थ —श्री प्रवचनसार गाथा ११३ मे प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय निश्चित स्वकालसे होती है, जिस समय जो पर्याय होनी हो वह उस समय न होवे तो स्वकाल नही कहलाता, बमका पडना, नदीके प्रवाहको फेरना यह सभी अपने २ स्वकालसे है परकालसे नही है ऐसा अनेकान्त है। जो पर्याय जिस कालमे होनेवाली हो उसी कालमे हो, अन्य कालोमे नही। इस गाथाकी सस्कृत टीका पृष्ठ १४७ मे लिखा है कि "यश्च पर्यायाणा द्रव्य भूतान्वय शक्त्यानु स्यूत क्रमानुपाती स्वकाले प्रादुर्भाव तस्मिन्पर्याय भूताया आत्म व्यतिरेकव्यक्ते पूर्व सत्त्वत्पर्याय अन्य एव।" इससे सिद्ध होता है कि द्रव्यमे अनादि अनन्त पर्यायें एक दूसरेके साथ अनुस्यूति (सधि की हुई) होनेसे क्रम अनुपाति कहनेमे आता है। स्वकालमे उसका प्रादुर्भाव होता है, इसलिये पर्यायको कोई भी आगे-पीछे करनेका सामर्थ्य नही रखता।

क्रमवद्धका यथार्थ निर्णय अकर्तृत्वरूप ज्ञातादृष्टापना प्रगट करनेका और अज्ञानके नाशका उपाय

२०—क्रम नियमित —यह शब्द श्री समयसारजीमे गाथा ३०८ से ३११ तककी सस्कृत टीका पृष्ठ ४४४ मे दो बार आया है, ये गाथाये आत्माका अकर्तापना बताती हैं। श्री समयसारजीमे कर्ता कर्म अधिकार गाथा ६९ मे १४४ तक आया है, उसका आशय यह है कि जीव अनादिसे परद्रव्यका एकत्व बुद्धि द्वारा कर्ता अज्ञानसे मानकर प्रवर्तता है, और रागादि विभावोंका कर्ता बनता है, इसलिये **जबतक आत्मा और आश्रव इन दोनोंका विशेषान्तर जीव नहीं जानते हैं तब तक वे अज्ञानी रहते हैं** और जब वे दोनोका विशेषान्तर जानते हैं तब वे ज्ञानी होते हैं। (देखो गाथा ६९ से ७१ तक) श्री समयसारजी गाथा १२७, पृष्ठ २०० की टीका मे लिखा है कि, "अज्ञानीके सम्यक् प्रकारसे स्व-परका विवेक न होनेके कारण भिन्न आत्माकी ख्याति अत्यन्त अस्त होगई होनेसे, अज्ञानमय भाव ही होता है और उसके

होनेसे, स्व-परके एकत्वके अध्यासके कारण ज्ञानमात्र ऐसे निजमेंसे (आत्म स्वरूपमेंसे) भ्रष्ट हुआ, पर ऐसे राग-द्वेषके साथ एक होकर जिसके अहंकार प्रवर्त्त रहा है ऐसा स्वयं 'यह मैं वास्तवमें रागी हूँ द्वेषी हूँ (अर्थात् यह मैं राग करता हूँ द्वेष करता हूँ)' इसप्रकार (मानता हुआ) रागी और द्वेषी होता है, इसलिये अज्ञानमय भावके कारण अज्ञानी अपनेको पर ऐसे राग-द्वेषरूप करता हुआ कर्मोंको करता है।" तथा गाथा ९७ मे स्वयं कुन्दकुन्द प्रभु कहते है कि "इसलिये निश्चयके जाननेवाले ज्ञानियोंने उस आत्माको (अज्ञानीको) कर्त्ता कहा है, ऐसा निश्चयसे जो जानता है वह (ज्ञानी होता हुआ) सर्व कर्तृत्वको छोड़ता है।"

२१—आलापपद्धति श्री देवसेनसूरि विरचित पृष्ठ १०५ मे सकरादि आठ दोषोका वर्णन किया है, उसमे लिखा है कि; वस्तुका नियमित आकार नियमित क्षेत्र, नियमितकाल और नियमितभाव रूपसे ज्ञान नही होनेको अप्रतिपत्ति दोष कहते हैं।"

देखिये, जो अशुद्ध द्रव्यकी भविष्यकी पर्याय नियमित न हो ऐसा बन ही नही सकता क्योकि ऐसा होवे तो उसका ज्ञान नही हो सकता इसलिये अशुद्ध द्रव्यकी कोई भी भविष्यकी पर्याय अनियमित है अनिश्चित है ऐसा माननेमे अप्रतिपत्ति दोष आता है। इसके फलस्वरूप यह हुआ कि सब पर्याय क्रमबद्ध हैं कर्तापनेके दोषका अभाव करनेके लिये ऐसा मानना हरएक विवेकी जीवका कर्तव्य है।

इस सिद्धान्तको विशेष स्पष्ट करनेके लिये अर्थात् जीव 'अकर्ता' है ऐसा बतानेके लिये समयसार सर्व विशुद्धज्ञान अधिकार गाथा ३०८ से ३११ तक आधार दिया है। अब विचारिये—जो किसी भी द्रव्यकी पर्याय क्रमबद्ध न हो और आगे-पीछे हो सकती हो तो जीवको कभी भी परद्रव्यका अकर्तृत्व (ज्ञातादृष्टापना) नहीं प्रगटेगा और अपनी पर्यायमें जो कुछ पर्याय आगे-पीछे हो सकती है

तो आगे-पीछे करनेका राग (विकल्प) कभी भी नहीं छूटेगा और जीवको ज्ञाताद्रष्टापना कभी भी प्रगट नहीं होगा, इसलिये इस गाथामें सब द्रव्योंकी पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं, ऐसा हेतु बताकर जीवको अकर्ता (ज्ञाताद्रष्टा) सिद्ध किया है। जो जीव क्रमबद्ध पर्यायके सिद्धान्तको नही मानते हैं उनको कर्तापनेका अज्ञान मिटकर अकर्तापना (ज्ञातादृष्टापना) कभी भी प्रगट नही होगा। श्री गाँधीजी कृत वडा जोडणी कोषके आधारसे यहाँ क्रम नियमित शब्दका अर्थ क्रमबद्ध करनेमें आया है। इसका कारण निम्न प्रकार है।

क्रमबद्ध यह क्रमनियमितका गुजराती अनुवाद है।

२२—'**क्रमनियमित**' शब्द संस्कृत भाषाका है तथा किसी भी प्रसिद्ध आचार्यने गुजराती, हिंदी भाषामे द्रव्यानुयोगका कोई भी शास्त्र नही लिखा है, इसलिये उन शास्त्रोमे 'क्रमबद्ध' शब्द न आवे यह स्वाभाविक है। वि० संवत् १९९७ मे श्री समयसारका गुजराती भाषामे अनुवाद प्रथमवार प्रसिद्ध हुआ उसमे **सर्वप्रथम गुजराती भाषामें क्रमनियमितका अर्थ** '**क्रमबद्ध**' किया गया है, इसलिये परिणामोको क्रमबद्ध कहो या क्रमनियमित कहो इसमे कोई अन्तर नही है।

'नियमित'का अर्थ जीवकी चैतन्यरूप और पुद्गलकी जडरूप पर्यायका निश्चितपना ऐसा कोई अर्थ करते हैं, यह गलत है क्योंकि इतना मात्र अर्थ करनेसे कर्तापना मिट नही सकता और सर्व विशुद्ध ज्ञान प्रगट नही होता और 'नियमित'का अर्थ जिससमय जो पर्याय होनेवाली होती है उस समय वही होती है ऐसा अनुभवमे आये तब ही कर्तापनेका अज्ञान मिट सकता है।

नियम रूप निष्कंप होते हैं—देखो समयसार कलश २७५।

नियमितका अर्थ —श्री समयसारजीमे ३०८ से ३११ तककी गाथाओमे अकर्तापना बताया है, जीवका परिणाम अजीव नही है और

अजीवका परिणाम जीव नही है ऐसा बतानेके लिये क्रमनियमित शब्द-का प्रयोग करनेकी कोई जरूरत नही थी, क्योंकि जो कोई ऐसा कहते है कि प्रथम तो जीव अपने परिणामोसे उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नही है, और अजीव भी इसीप्रकार अपने परिणामोसे उत्पन्न हुआ अजीव ही है, जीव नही है। इतनी बात सिद्ध करनेके लिये क्रमनियमित शब्दकी कोई आवश्यकता नही है, क्रमनियमित तो परि-णामोका स्वरूप बतानेके लिये विशेषण है, और अनादिकालसे अनन्त काल तकका हरेक परिणाम अपने स्वकालमे ही होता है अर्थात् आगे पीछे वा उलट-सुलट कभी होता ही नही है।

क्रमबद्ध शब्दका प्रयोग हिन्दी अनुवादमें ५० वर्ष पहले पं० लालारामजीने किया है

आचार्य श्री विद्यानन्दजी कृत श्री पात्र केशरी स्तोत्र कलकत्तासे हिन्दी अनुवाद सहित ५० वर्ष पहले प्रसिद्ध हुआ है, इसका हिन्दी अनुवाद पडित लालारामजीने किया है, उसमे पृष्ठ १४, श्लोक १४ मे लिखा है कि "जैसे मनुके बनाये हुये सूत्र, इसीप्रकार वेदके बनाने वालेका नाम भी सुननेमे आता है। इसलिये वह भी किसी न किसी-का बनाया हुआ अवश्य है, इसके सिवाय वेदोके सुवत तिङ त (शब्द क्रियायें) आदि अनेक पदोके समूहकी रचना **क्रमबद्ध दिखाई पडती है, जिसकी रचना क्रमबद्ध होती है,** वह मनुके सूत्रोंके समान किसी न किसीका बनाया अवश्य है।" इसमे 'क्रमबद्ध' शब्द दो बार आया है, वहाँ "प्रति नियम" शब्दका हिन्दी अनुवाद 'क्रमबद्ध' करनेमे आया है, क्रमबद्ध शब्द प्रथम गुजराती समयसारमे आया है ऐसा नही है, किंतु श्री पात्रकेशरी स्तोत्रका अनुवाद लगभग ५० वर्ष पहले हुआ था। उसमे प्रथम आया है। 'प्रतिनियम' कहो, 'क्रम नियमित' कहो, प्रति-नियत' कहो, 'ज्ञान प्रति नियत' कहो, 'क्रमबद्ध' कहो इनमे (शाब्दिक अन्तर होने पर भी) तात्त्विक अन्तर नही है, इसलिये 'क्रमनियमित' शब्दका 'क्रमबद्ध' ऐसा अनुवाद न्यायपूर्वक है।

प्रति नियम आदि शब्द एकार्थ वाचक है

२३—श्री विद्यानन्द स्वामीने आप्त मीमासाके १५ वे श्लोक-की टीकामे लिखा है कि, "तथा स्वद्रव्यके समान परद्रव्यसे भी यदि सत्त्व मान लिया जाता है तो द्रव्योका 'प्रतिनियम' होनेमे विरोध आ जायेगा।" यहाँ 'प्रतिनियम'का अर्थ '**नक्की होनाके**' रूपमे आया है। 'क्रमबद्ध' भी प्रतिनियमका नियम बताता है।

क्रमबद्धका हिन्दीमें अनेक स्थानोंमें प्रयोग

२४—वीर निर्वाण सम्वत् २४७६ विक्रम २००६ मे पाटनी ग्रन्थमालासे समयसारका हिन्दी अनुवाद प्रसिद्ध हुआ, उसका अनुवाद प० परमेष्ठीदासजी (न्यायतीर्थ) ने किया है उसमे भी पृष्ठ ४४४ मे क्रम नियमितका अनुवाद 'क्रमबद्ध' करने मे आया है।

आत्म सबोधन पुस्तक (क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी कृत) जो वि० सम्वत् २००८ मे छपी है, उसमे पृष्ठ ८४ मे लिखा है कि "क्रम-बद्ध पर्याय पर विश्वास रखकर बुद्धिपूर्वक कुछ न करनेका महान पुरुषार्थ करो।" (क्रमश)

सैद्धान्तिक चर्चा

लेखांक—२

पर्यायमें क्रम-अक्रमपनेका सम्यक् अनेकान्त, सर्वज्ञ स्वभावका निश्चय, ज्ञान और ज्ञेयमें तीनोंकाल सुनिश्चितपना, अकर्तापनेका-स्व-सन्मुख ज्ञातापनेका सच्चा पुरुषार्थ, काल, स्वभाव नियति और कर्ममें अनेकान्तपना तथा व्यवहारनयके विषयकी मर्यादा, अकाल मृत्यु आदि अनेक विषय सर्वज्ञ वीतराग कथित आगमानुसार इस लेखमालामें आवेंगे जिसमें अपूर्व तत्वज्ञानकी जिज्ञासा होगी वह मध्यस्थता-और धैर्यसे यह लेख पढ़कर सच्चे समाधानको प्राप्त करेंगे। अभी तो प्रस्तुत लेख में भूमिका ही है। [संपादक]

देखिये —यहाँ क्रमबद्ध यथार्थरूपसे माननेका फल अकर्तापनेका महान् पुरुषार्थ है ऐसा कहा है। (१) क्रमबद्ध माननेसे सत्य पुरुषार्थका नाश होता है। और (२) क्रमबद्ध एकात मिथ्या नियतिवाद है, ऐसा अज्ञानियोका कथन उपरोक्त आधारसे मिथ्या ठहरता है।]

तथा पृ० ७८ मे लिखा है कि "सर्वज्ञ व क्रमबद्ध पर्याय पर विश्वास न रखनेवालेका मन बे लगाम दौड लगाता ही रहता है"।

गुजराती कोष व गुजरातीकार्तिकेयानुप्रेक्षामें क्रमबद्ध शब्द तथा उसका अर्थ।

२५—स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा (गुजराती भाषामे श्री राजचद्र ज्ञान प्रचारक ट्रस्ट अहमदाबादसे सम्वत् २००७ मे छपी) पृ० १२३ गाथा १४४ मे लिखा है कि, "द्रव्य तो त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायोंनुं समुदाय छे, अने काल भेदथी 'क्रम-बद्ध' पर्यायो थाय छे।"

लगभग चालीस वर्ष पहले गुजरात विद्यापीठ नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदावादसे प्रकाशित 'सार्थ गुजराती जोडनी कोष (लेखक–श्री गाँधीजी) मे "क्रम=एक पछी एक आवे ऐसा, सकलनावद्ध, नियत क्रमवाला, क्रमवद्ध इसलिये **क्रम नियमितका गुजराती भाषा-में अनुवाद क्रमवद्ध ही होना चाहिये ऐसा सिद्ध होता है।**

भूत भविष्य पर्यायें ज्ञान प्रति नियत प्रत्येक पर्याय–नियत–स्वरूप ज्ञानको अर्पण, अपना स्वरूप ज्ञानको अर्पण

२६–श्री प्रवचनसार गाथा ३८ पृ० ४५ मे भगवान श्री अमृतचन्द्रा-चार्यजीने नीचे अनुसार कहा है "जो (पर्यायें) अवतक भी उत्पन्न ही नही हुई और जो उत्पन्न होकर नष्ट होगई हैं और वे (पर्यायें) वास्तव-मे अविद्यमान होने पर भी **ज्ञानके प्रति नियत होनेसे** (ज्ञानमे निश्चित स्थिर लगी हुई होनेसे, ज्ञानमे सीधी ज्ञात होनेसे) ज्ञान–प्रत्यक्ष वर्तती हुई, पाषाण स्तम्भमे उत्कीर्ण, भूत और भावी देवो (तीर्थंकर देवो) की भाँति **अपने स्वरूपको अकम्पतयां (ज्ञानको) अर्पित करती हुई** (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं।"

भूत भविष्य सर्व पर्यायें ज्ञान प्रभु शक्तिसे अत्यन्त आक्रमित वे सव पर्यायें स्वरूप सर्वस्वको युगपद् ज्ञानको अर्पित करे ऐसा परस्पर अनिवार्य सम्बन्ध

२७—गाथा ३९ मे यही वात विशेप दृढ की है, उसमे लिखा है कि, "जिसने अस्तित्वका अनुभव नही किया है और जिसने अस्तित्व-का अनुभव कर लिया है ऐसी (अनुत्पन्न और नष्ट) पर्याय मात्रको **यदि ज्ञान अपनी निर्विघ्न विकसित अखंडित प्रतापयुक्त प्रभुशक्तिके द्वारा वलात् अत्यन्त आक्रमित करे** (प्राप्त करे) तथा वे पर्यायें अपने **स्वरूप सर्वस्वको अक्रमसे अर्पित करे** (एक ही साथ ज्ञानमे ज्ञात हो)

इसप्रकार उन्हें प्रतिनियत न करे (अपनेमे निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने) तो उस ज्ञानकी दिव्यता क्या है ? इससे (यह कहा गया है कि) पराकाष्ठाको प्राप्त ज्ञानके लिये यह सब योग्य है।"

संक्षेप सार–सारांश

२८—इस सब विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि पर्याय क्रमबद्ध ही होती है आगे या पीछे नही होती है। यह ही सम्यक् अनेकात है; ऐसा न हो तो अज्ञानी जीवको कर्तापनाका भाव कभी भी न छूटकर अकर्तृत्वपना नही आयेगा।

पर्याय आगे–पीछे या असमयमें होती है उसका अर्थ क्या ?

२९—पर्यायका स्वकाल न रहेगा'—पर्याय आगे–पीछे होती है ऐसा कहनेका अर्थ क्या ? यह विचारना चाहिये। जो पर्यायें होनेवाली थी वे अन्य द्रव्यके प्रयोग विशेषसे नही हुई, तो उनका क्या हुआ ? क्या वे बिना हुए ही अतीत होगई या आगे होगी ? बिना हुए वे अतीत होगई यह कहना बन नही सकता, क्योकि जो वस्तु हुई ही नही वह अतीत कैसे हो सकती है ? आगे होगी यह कहना भी नही बन सकता, क्योकि ऐसा मानने पर **किसी भी पर्यायका स्वकाल न बन सकेगा। यह केवल एक पर्यायका प्रश्न नहीं है किन्तु उसके बाद आनेवाली अनन्त पर्यायोंका प्रश्न है,** क्योकि किसी एक विवक्षित पर्यायके स्वकालमे न होनेसे सभी **जीवों और पुद्गलोंकी पर्यायों-के स्वकालका नियम नहीं रहता,** इतना ही नही किन्तु **अकालके आश्रयसे** जिन पर्यायोका हम बीचमे होना नही मानते हैं उनका अभाव होनेसे सब द्रव्योकी पर्यायें सख्यासे कालद्रव्यकी पर्यायोके समान हैं, यह सिद्धान्त नष्ट हो जावेगा, सो युक्त नही है।

पुरुषार्थ

३०–प्रश्न।—कोई ऐसा मानते है कि क्रमबद्ध पर्याय माननेसे पुरुषार्थ समाप्त हो जाता है, क्या यह बात सच्ची है ?

उत्तर —नही, यह बात भूठी है, क्योकि समयसारजी गाथा ३०८ से ३११ तककी टीकामे लिखा हुआ क्रमबद्ध पर्यायके सिद्धान्त-का फल यह है कि अज्ञानी जीवकी अनादि कालसे परके कर्तृत्वकी मिथ्या बुद्धि मिट जाती है और ज्ञातापना प्रगट होता है यही सच्चा पुरुषार्थ है। 'आत्म सम्बोधन' पृ० ८४

क्रमबद्ध पर्यायका सच्चा ज्ञान तभी कहा जाता है, जबकि जीव पराश्रयको छोडकर अपनी आत्माके सम्मुख होकर अनादिसे चलती आई हुई कर्तृत्व बुद्धिका नाश कर अकर्तृत्व बुद्धि (ज्ञाता दृष्टापना) प्रगट करे, यह ही सत्यार्थ पुरुषार्थ है, पर पदार्थकी पर्यायको कुछ आगे–पीछे करनेका या अपनी पर्यायमे आगे–पीछे करनेका विकल्पका स्वामी होना, वह तो अज्ञानीका असत्यार्थ पुरुषार्थ है।

"क्रमबद्ध पर्याय माननेसे पुरुषार्थ सहित पाँच समवाय और शिवमार्ग"

३१—यथार्थरूपसे क्रमबद्ध माननेसे अकर्तापना प्रगट होता है पाँच समवाय निम्न प्रकार है। (१–२) अपने त्रिकाली स्वभावके सन्मुख अपनी पर्याय हुई, (इसमे स्वभाव व पुरुषार्थ ऐसे दो समवाय आये) (३) इस समयमे जो पर्याय हुई वह उसका स्वकाल था, वह हुई काल लब्धि (४) जो पर्याय हुई वही नियत थी इसलिये यह हुई नियति। (५) उसी समय दर्शन मोह आदि कर्मका उपशमादि हुआ वह निमित्त, इस प्रकार पाँच समवाय आये।

३२—श्री समयसार नाटक सर्व विशुद्धि द्वार पृ० ३३५ मे कहा है 'इन—पाँचोको सर्वांगी मानना वह शिवमार्ग है, और किसी एकको ही मानना वह पक्षपात होनेसे मिथ्यामार्ग है।'

अनेकान्तरूप पुरुषार्थ

३३—इस विषयमे 'वस्तु विज्ञान सार' नामकी पुस्तकमे '**पुरुषार्थ**' नामका प्रवचन पृ० १ से ४६ तक आया है, उसको पढनेसे यह बात

स्पष्ट हो जायेगी। मिथ्या पुरुषार्थका अभाव हुआ और सम्यक् पुरुषार्थका परिणमन हुआ ऐसा अनेकान्त स्वरूप जीवमे प्रगट हुआ। यह उसका फल आया।

क्रमबद्ध पर्यायके यथार्थ ज्ञानसे आत्मा को जानने का पुरुषार्थ

३४—श्री कुन्द-कुन्दाचार्य देव प्रवचनसारकी ८० वी गाथामे कहते हैं कि जो जीव अरहतको द्रव्यसे, गुणसे और पर्यायसे जानता है। उसको अपनी आत्माको जाननेका पुरुषार्थ प्रगट होता है, और उसका मोह अवश्य ही नाशको प्राप्त होता है, अरहतकी ज्ञान पर्याय अनादिसे अनन्तकाल तककी सर्व पर्यायोको एक ही साथ जानती है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि क्रमबद्ध पर्यायका ज्ञान होनेसे आत्माको जाननेका सच्चा पुरुषार्थ प्रगट होता है। इसलिये जो जीव ऐसा मानता है कि, क्रमबद्ध माननेसे पुरुषार्थ समाप्त हो जाता है, उसका मन भगवान श्री कुन्द-कुन्दाचार्यसे विरुद्ध है, इसलिये वह अरहतके मतका नही है।

केवलज्ञानके वश सब पर्यायें—ज्ञान ज्ञेय परस्पर निमित्त

३५—'श्री पात्र केशरी स्तोत्र' पृ० ६, श्लोक ६ मे भगवानकी स्तुति करते हुए कहा है कि, "वश च भुवनत्रय" अर्थात् "तीनो जगत भी आपकी आज्ञाके आधीन हैं"। इस परमे सिद्ध होता है कि भगवानके केवलज्ञानके वश तीनो जगतकी पर्यायें होती है, उसमे आगे-पीछे कुछ भी नही होता है।

ज्ञानमें ज्ञेय निमित्त—ज्ञेयके लिये ज्ञान निमित्त

३६—कितने ही लोग ऐसा मानते हैं कि केवलज्ञानके लिये सब ज्ञेय तीनो कालकी पर्यायो सहित निमित्त कारण हैं, किन्तु तीनों कालकी पर्यायोंके लिये ज्ञान निमित्त कारण नहीं है, परन्तु यह मान्यता झूठी है, क्योंकि दोनोंमें परस्पर निमित्तपना हर समय है; इस विषय-

मे श्री समयसारजी गाथा ३५६ मे ३६५ तककी टीकामे पृ० ४६७ मे लिखा है कि, "इस प्रकार ज्ञानगुणसे परिपूर्ण स्वभाववाला चेतयिता भी, स्वय पुद्गलादि परद्रव्यके स्वभावरूप परिणमित न होता हुआ, और पुद्गलादि परद्रव्यको अपने स्वभावरूप परिणमित न करता हुआ, पुद्गलादि परद्रव्य जिसमें निमित्त है ऐसे अपने ज्ञान गुणसे परिपूर्ण स्वभावके परिणाम द्वारा उत्पन्न होता हुआ, चेतयिता जिसको निमित्त है ऐसे अपने (पुद्गलादिके) स्वभावके परिणाम द्वारा उत्पन्न होते हुये, पुद्गलादि परद्रव्यको अपने (चेतयिताके) स्वभावसे जानता है—ऐसा व्यवहार किया जाता है।" तथा उसी प्रकार दर्शन गुण, चारित्रगुणका भी परकी साथका परस्पर निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध बताया है ।

जिनवर, सर्वगत, सर्व पदार्थ, जिनवर गत

३७—श्री प्रवचनसार गाथा २६ पृ० २९ मे "जिनवर सर्वगत है और जगतके सर्व पदार्थ जिनवर गत है," तथा ३६ वी गाथाकी टीकामे पृ० ४३ मे कहा है कि, "इसलिये आत्माके, द्रव्य जिसका आलम्बन है ऐसे ज्ञान रूपसे (परिणति) और द्रव्योंके, ज्ञानका अवलम्बन लेकर ज्ञेयाकाररूपसे परिणति अवाधितरूपसे तपती है प्रतापवत वर्तती है।"

३८—श्री प्रवचनसार पृ० ४३ पर लिखा है कि, नोट—(१) ज्ञानके ज्ञेयभूत द्रव्य आलम्बन अर्थात् निमित्त है, यदि ज्ञान ज्ञेयको न जाने तो ज्ञानका ज्ञानत्व क्या रहा ? (२) ज्ञेयका ज्ञान आलम्बन अर्थात् निमित्त है, यदि ज्ञेय ज्ञानमे ज्ञात न हो तो ज्ञेयका ज्ञेयत्व क्या हुआ ?"

विपरीत मान्यता

३९—इसलिये जो ऐसा मानते हैं कि, ज्ञान ज्ञेयको यथार्थरूप से जान करके परिणमन करता है, वह सत्य है, परन्तु ज्ञानको

अवलम्बन कर ज्ञेयाकाररूप परिणति नही होती, ऐसा माननेवाला ज्ञान ज्ञेयका, श्रद्धा श्रद्धेयका, दर्शन दृश्यका, अपोहक अपोह्य आदिका परस्पर निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्धसे अज्ञात है। उसको स्व–सवेदन ज्ञान कभी नही होगा।

प्रश्न —क्रमबद्ध माननेसे एकान्त मिथ्या नियतिवाद आजाता है ऐसा कोई मानते हैं और उसके आधारमे गोम्मटसार कर्म काड ८७९–८८२–८९१ और अमितगति आचार्यकृत पचसग्रहका आधार देते है, क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर —यह बात झूठ है, जो जीव पुरुषार्थ आदिका निषेध कर एकान्त नियतिको मानते हैं अर्थात् जो पाँच समवायमेसे त्रिकाली स्वभाव, वर्तमान पुरुपार्थका स्व-सन्मुख झुकाव, काल तथा कर्मकी अवस्था जो इन चारको नही मानकर अकेले नियतिको मानते हैं उनके लिये यह गाथायें हैं, इसके विरुद्ध गोम्मटसारकी गाथाओंका और अमितिगति आचार्यकृत पच सग्रहका अर्थ करना वह शास्त्र-का विपरीत अर्थ है।

४०—यह बात जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला गुजराती विक्रम-सम्वत् २०१२ मे प्रसिद्ध हुई है, उसके दूसरे भागके पृ० ८४, प्रकरण दसवाँ मोक्षमार्ग अधिकारमे आया है। वहाँ से पढ लेना, इसका अनुवाद हिन्दीमे 'श्री सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला बम्बई' से प्रकाशित हुआ है, इसमे तीसरे भागमे मोक्षमार्ग अधिकार दसवाँ प्रकरण पृ० ५९ मे देख लेना।

पर्यायका दूसरा अर्थ

४१—पर्यायको परिणाम कहते है यह बात तो आगई है, यहाँ इसका दूसरा अर्थ करनेमे आता है, श्री समयसारजी गाथा ७६ मे लिखा है कि प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य ऐसा व्याप्य लक्षणवाला परिणामस्वरूप कार्य कर्म, कर्ताका कार्य है, उसको कार्य कहो, या

पर्याय कहो अथवा कर्म कहो यह सब एक ही बात है। 'प्राप्य'का अर्थ—प्राप्त होने योग्य, जो पर्याय जिस द्रव्यकी, जिस कालमे होती है वह प्राप्य होने योग्य ही होनी है, दूसरी नही होती ऐसा अनेकान्त होनेसे पर्यायको 'प्राप्य' कहनेमे आया है।

४२—श्री प्रवचनसार गाथा १२२ की सस्कृत टीकामे पृ० १७२ पर जयसेनाचार्य कहते हैं कि, "**जीवेन स्वतंत्रेण स्वाधीनेन शुद्धा-शुद्धोपादानकारण-भूतेन प्राप्यत्वात्माक्रिया कर्मेति मता-समंता**" तथा पृ० १७६ मे प्राप्यका व्याप्य और कर्म, कारक कहा है" तथा श्री प्रवचनसार अमृतचन्द्राचार्य कृत पृ० १५९ गाथा १२२ की टीकामे लिखते हैं कि, "जो (जीवमयी) क्रिया है वह आत्माके द्वारा **स्वतंत्रतया प्राप्य होनेसे 'कार्य' है।**"

साराश यह हुआ कि कोई भी पर्याय विकारी-हो-या-अविकारी वह सब स्वतन्त्र है—स्वाधीन है, उसको अक्रमिक कहना आगम विरुद्ध है, आगमका ऐसा वचन है ही नही, तथा वह न्यायसे भी विरुद्ध ही है।

उसमें यह अनेकान्त है:—

(१) पूर्व-उत्तर पर्यायकी सतान क्रमबद्ध है और वे आगे-पीछे नही होती।

(२) वे अपने स्वरूपसे क्रमबद्ध है, और परके स्वरूपसे क्रमबद्ध नही हैं अर्थात् पर स्वरूपसे अक्रमबद्ध हैं ऐसा समझना।

(३) पूर्व-उत्तर सतानरूप पर्याय क्रमबद्ध है, और एक समयकी सर्व गुणकी पर्याय एक ही साथ होनेसे अक्रमबद्ध है।

(४) पर्याय क्रमबद्ध है, गुण एक ही साथ होनेसे अक्रमबद्ध है।

(५) जिस प्रकार विस्तार क्रममे हरएक प्रदेश **क्रमबद्ध अपने २ स्थान में है,** उसका स्थान आगे-पीछे नही होता, उसी प्रकार

प्रवाह क्रममें सर्व पर्यायें क्रमबद्ध अपने अपने अवसर (काल) में है, आगे-पीछे नहीं होती।

(६) पाँच समवायमेंसे सब पर्यायें अपनी काललब्धिकी अपेक्षा स्वकालमें है और काललब्धिके सिवाय चार समवायकी अपेक्षासे (काललब्धिरूप नहीं होनेसे उनकी अपेक्षा) वे पर्याय अकालरूप है।

पुरुषार्थ आदि पंच समवाय

(७) प्रत्येक पर्याय पाँच समवायमेंसे नियतिकी अपेक्षा 'नियत' है, बाकीके चार समवाय (नियतसे इतर होनेसे)की अपेक्षासे अनियत है किन्तु इसलिये उनका नियतपना (क्रमबद्धपना) का अभाव होकर आगे-पीछे नहीं हो जाते। इसप्रकार इन सबमें सम्यक् अनेकान्त लागू पड़ता है। कोई पर्याय क्रमबद्ध होती है और कोई पर्याय आगे-पीछे होती है यह अनेकान्तकी व्याख्यासे विरुद्ध है क्योंकि एक ही वस्तुमें परस्पर विरुद्ध दो शक्तियोंका प्रकाशित होना यह अनेकान्तका स्वरूप है। श्री समयसारजीमें स्याद्वाद अधिकारके परिशिष्ट पृ० ५७३में अनेकान्तका ऐसा स्वरूप बताया है कि, "जो तत् है वही अतत् है) जो एक है वही अनेक है। जो सत् है वही असत् है। जो नित्य है वही अनित्य है। इस प्रकार एक वस्तुमें वस्तुत्वकी उपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियोंका प्रकाशित होना अनेकान्त है।"

पर्यायमें क्रम अक्रमका अनेकान्त

४२—जो पर्याय क्रमबद्ध है वही दूसरी अपेक्षासे अक्रमबद्ध है ऐसा सिद्ध करना वह सच्चा अनेकान्त है। परन्तु कोई पर्याय क्रमबद्ध है, और कोई अक्रमबद्ध है ऐसा अनेकान्त करना मिथ्या अनेकान्त है।

है किन्तु उसमे जो धर्म न हो, उसमे भी अनेकान्त लागू कर देना वह मिथ्या अनेकान्त है ।

दृष्टान्तः—कालाणु एक प्रदेशी द्रव्य है इसलिये उसे "अस्ति" कह सकते हैं किन्तु उसे कथञ्चित् 'अस्तिकाय' नही कह सकते है, कारण कि वह दूसरे कालाणुओके साथ किसी भी प्रकार (बंधरूप) इकट्ठा नही हो सकता, इसलिये 'वह कथञ्चित् अकाय भी है व कथञ्चित् सकाय भी है' ऐसा अनेकान्त मिथ्या है किन्तु "कालाणु" अकाय ही है और कभी सकाय नही है ऐसा अनेकान्त सम्यक् है । इस परसे यह सिद्धात घटित होता है कि, हरेक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है । कोई पर्याय क्रमबद्ध भी है और आगे-पीछेरूप अक्रमबद्ध भी है एसा अनेकात मिथ्या है किन्तु पर्याय निश्चित क्रमबद्ध है, आगे-पीछेरूप (अक्रमबद्ध) नही है ऐसा अनेकान्त सम्यक् हैं, भगवानने ऐसा अनेकान्त कहा है । श्री अमृतचन्द्राचार्यजीने प्रवचनसार गाथा १४७मे बताया है कि, "पर्याये पर्यायभूत स्वव्यतिरेक व्यक्तिके कालमे ही सत् (विद्यमान) होनेसे उससे अन्य कालोमे असत् (अविद्यमान) ही है ।"

स्वकालमें अस्ति नास्तिरूप अनेकान्त

४६—श्री अमृतचन्द्राचार्यजीने समयसार स्याद्वाद अधिकारमे पृ० ५७५ मे लिखा है कि, " × × तब (उस ज्ञान मात्र भावका) स्वकालसे सत्पना प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त ही उसे जिलाता है (नष्ट नही होने देता) ।

४७—× × ×—तब (उस ज्ञानमात्रका) पर कालसे असत् प्रकाशित करता हुआ अनेकान्त ही उसे अपना नाश नही करने देता ।

—इससे सिद्ध हुआ कि सभी द्रव्योका हरेक पर्याय स्वकालमे ही होती है, अन्य कालमे (परकालमे) होती ही नही ।

अकाल मृत्यु

४८—गोम्मटसार जीवकाण्ड प्रथमावृत्ति पृ० १८६ मे लिखा है कि "जीवोके दो भेद हैं (१) सोपक्रमायुष्क (२) अनुपक्रमायुष्क ।

जिनका विष शस्त्रादि निमित्तके द्वारा मरण संभव हो उनको सोप-क्रमायुष्क कहते हैं। जो इनसे रहित हैं उनको अनुपक्रमायुष्क कहते हैं। जो सोपक्रमायुष्क हैं उनके तो उक्त रीतिसे ही परभव सम्बन्धी आयुका बंध होता है। किन्तु अनुपक्रमायुष्कमें कुछ भेद है, वह यह है कि अनुपक्रमायुष्कोंमें जो देव और नारकी हैं वे अपनी आयुके अंतिम छः महिना शेष रहने पर आयुके बंध करनेके लिये योग्य होते हैं। इसमें भी छः महीनाके आठ अपकर्ष कालमें ही आयुका बंध करते हैं,—दूसरे कालमें नहीं। जो भोगभूमिया, मनुष्य या तिर्यंच हैं वे अपनी आयुके नौ मास शेष रहनेपर नौ मासके आठ अपकर्ष कालमें ही आयु-का बंध करते हैं—दूसरे कालमें नहीं। जो भोगभूमिया तिर्यंच हैं वे अपनी आयुके नौ मास शेष रहने पर नौ मासके आठ अपकर्षोंमेंसे किसी भी अपकर्षमें आयुका बंध करते हैं। इस प्रकार इन लेश्याओंके आठ अंश आयु बंधके कारण हैं। जिस अपकर्षमें जैसा जो अंश हो उसके अनुसार आयुका बंध होता है।"

आयु कर्मके दो स्वभाव

४९—देखिये—आयु कर्म दो प्रकारका है (१) सोपक्रम, (२) अनुपक्रम। जिस जीवके सोपक्रम आयु है उसकी मृत्युके लिये ऐसा नियम है कि उसकी आयु नियमसे उदीरणारूप होगी और उदयरूप नहीं होगी। यह भी जीवकी निश्चित योग्यता बतलाते हैं कि इतने काल इस जीवके साथ यह शरीर संयोगरूप रहेंगे। उसके अंतिम अंतर्मुहूर्तमें आयु कर्मका निषेक उदीरणाके रूपमें होगा, ऐसा उस जीवका और आयु कर्मकी उदीरणाका परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है।

आयुष्यके उचित नियम

५०—जो जीव निरुपक्रम आयुष्यवाला हो, उसका आयु कर्म नियमसे उदीरणारूप नहीं होगा, इससे सिद्ध हुआ कि जिनको

उदीरणारूप आयुकर्म हुआ वह पर्याय अक्रमिक नही हुई, किन्तु उसके नियमरूप क्रमबद्ध हुई है क्योकि उसने उसी क्रमका ही आयुकर्म बाधा था ।

द्वादशानुप्रेक्षामे स्वामि कार्तिकेयने कहा है कि :—

जं जस्स जम्मिदेसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ॥३२१॥
तं तस्स तम्मिदेसे तेण विहाणेण तम्मिकालम्मि ।
को सक्कई चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ॥३२२॥
एवं जो णिच्चयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो संकदि सो हु कुदिट्ठी ॥३२३॥

५१—अर्थ—जिस जन्म अथवा मरणको जिस जीवके, जिस देशमे, जिस विधिसे, जिसकालमे नियत जिनेन्द्रदेवने जाना है उसे उस जीवके उस देशमे, उस विधिसे, उस कालमें, शक्र अथवा जिनेन्द्रदेव इनमेसे कौन चलायमान कर सकता है ? अर्थात् कोई भी चलायमान नही कर सकता। इस प्रकार जो निश्चयसे सब द्रव्यो और उनकी सब पर्यायोंको जानता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है और जो शका करता है वह कुदृष्टि (मिथ्यादृष्टि) है ।

५२—इसी तथ्यको पद्मपुराणमे इन शब्दोमे व्यक्त किया है।

"यत्प्राप्तव्य यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा ।
तत्प्राप्यते तदा तेन यत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥ २९—८३ ॥

जिस जीवके द्वारा जहाँ पर जिस कालमे जिस कारणसे जिम परिणाममे जो प्राप्तव्य है उस जीवके द्वारा वहाँ पर उम कालमे उस कारणसे उस परिणाममे वह नियमसे प्राप्त किया जाता है ।

५३—इससे सिद्ध होता है कि जिस जीवका मरण और जन्म जिस कालमे जिस विधिसे सर्वज्ञ देवने देखा है उस ही प्रकार होगा । आगे पीछे नही होगा ।

अक्रम कर देगा ऐसा तीनकालमे नही है, सयोग दृष्टिसे दो द्रव्यकी एक क्रिया माननेवाला ही परमे कर्तृत्व मानता है और उत्पाद व्ययरूप पर्याय अक्रमवर्ती भी है ऐसा सशयवादका पक्ष करते हैं।

[अकाल मृत्यु व्यवहारनयका विषय जरूर है किन्तु उसे अक्रम पर्याय निश्चयसे मानी जाय तो जन्मका काल भी अनिश्चित मानना पडेगा एक व्यक्तिका आयु पूर्ण हुवा किन्तु उत्पत्तिके स्थान और नया शरीर धारण करनेका समय-(--उत्पत्तिके काल) निश्चित नही है अक्रमवद्ध है तो ऐसा माननेवालोको न तो सर्वज्ञके व्यवस्थित ज्ञान-की प्रतीति है न तो ज्ञेयोकी व्यवस्थाके क्रमकी प्रतीति है न तो श्रुत ज्ञानकी ताकतकी प्रतीति है अत मनमे आया उसका पक्ष लेकर वे सर्वज्ञको अर्थात् मोक्षतत्त्वको भी अन्यथा मानते हैं।]

५४—एक जीवका मरण, उसके शरीरके साथ रहनेकी योग्यता हो उससे पहले हो जावे ऐसा अक्रमिक पर्याय माना जाय तो उस जीव के अगले नये भवके लिये जो आठो कर्म हैं उनके उदयका और ज्ञान, दर्शन, वीर्यादिकके क्षयोपशमका काल भी आगे पीछे इतने पहिले आ जावे तो क्या ऐसा मानना न्याय सगत है ? और जो ऐसा नियम माननेमे आवे तो उसकी अनतकाल तककी सर्व पर्यायें पहिले पहिले हो जावेगी, किन्तु ऐसा कभी नही वन सकता।

५५-प्रश्न—कार्तिकेयानुप्रेक्षा और पद्मपुराणके आधारके सबध मे कितनेक लोग ऐसा मानते है कि यह गोम्मटसार शास्त्रकी गा० ८८२से विरुद्ध कथन है इसलिये का० अनुप्रेक्षा और पद्मपुराणकी गाथाको सिद्धान्तरूपसे नही माननी चाहिये किन्तु कार्य होनेके वाद आश्वासन देनेके लिए यह गाथा दी है, क्या उनकी यह मान्यता वरावर है ?

उत्तर—नही, यह मान्यता सत्य नहीं है, इन गाथाओमें कोई विरोध नही है। गोम्मटसारमें जो मिथ्यादृष्टि एकान्तवादी कहा है

वह सिर्फ नियतिको ही मानता है, पुरुषार्थ आदिका निषेध करते है और जीवको तथा उसमे रहनेवाली सर्वज्ञ शक्तिको नही मानते उनके लिये वह एकान्तवाद निरूपक गाथाये है।

५६—कार्तिकेयानुप्रेक्षा तथा पद्मपुराणकी गाथाओमे आत्माका और सर्वज्ञ स्वभावका स्वीकार किया है ऐसे जीवकी बात है, सर्वज्ञ स्वभावका स्वीकार किया है ऐसा तो तब ही कहनेमे आता है कि जब पर्यायोको व्यवस्थित क्रमबद्ध मानकर विभाव व स्वभाव परिणमन मे सभीके छहो कारक स्वतन्त्र है ऐसा निर्णय करके कर्त्तापना छोड दे और स्वसन्मुख ज्ञाता दृष्टारूपसे आशिक भी परिणाम हो इसलिये यह गाथायें गोम्मटसारकी गाथाओसे परस्पर विरुद्ध नही हैं। शास्त्र मे किसी भी स्थान पर सिद्धान्त न देकर, निश्चित बात न करके आश्वासन देनेके लिये ऐसी ऐसी गाथा देवे ऐसा कभी भी नही बन सकता, **सम्यग्दृष्टि सिद्धान्तके विरुद्ध कथनसे आश्वासन मिले ऐसा कभी मानते भी नहीं।**

५७—स्वामी कार्तिकेयकी गाथायें सम्यक् अनेकान्तको दिखानेके लिये हैं। क्योकि उनमे सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहा है। और गोम्मटसारकी गाथामे एकान्तवादी गृहीत मिथ्यादृष्टिका लक्षण कहा है। **इस परसे यह भी सिद्ध हुआ कि हरेक संसारी जीवका जन्म और मरण अपने अपने स्वकालमें ही होता है किन्तु आगे पीछे अक्रमसे कभी भी नहीं होता है।**

५८—अकाल मृत्युका यह आशय नही है कि वह मरण उस समय नही होनेवाला था फिर भी होगया, तत्त्वदृष्टिमे देखो तो मरण तो ऐसा ही उसी कालमे ही होनेवाला था लेकिन उदीरणा मरण बतानेके लिये अपवर्ती आयुवालेको अकाल मृत्यु कहा है [कारण कि सोपक्रम अर्थात् अपवर्ती आयुमे उसके समयमे उदीरणा होती ही है—फिर उसे अक्रम कहना वह निश्चयकथन नही है किन्तु अपवर्ती आयु-

को पहिचान करानेवाला व्यवहारका कथन है]

५९—स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी ३२१, ३२२, ३२३ गाथाएँ देवी देवताओंकी आराधना लोग करते हैं मरणसे बचने आदि अनेक आशासे मानता करते हैं उन मिथ्यात्वियोंकी ऐसी आराधना छुडानेके लिये ही ऐसा लिखा है यह बात गलत है। कारण कि यह तो सम्यग्दृष्टिका स्वरूप कैसा है यह बतानेके लिये और जिनेन्द्रभगवानके ज्ञानकी निःसंदेह श्रद्धा व्यक्त करते हैं कि सर्वज्ञ जिनेन्द्रके ज्ञानमें जिस जीवका, जिस समय, जिस स्थानमें, जैसा ? निश्चित जन्म लेना और मरना भगवानने देखा है, वैसा ही उसी समयमे होगा आगे पीछे अक्रमिक नही होगा ऐसा सम्यग्दृष्टि मानते हैं।

गाथा ३२१ मे 'णियद' शब्दका प्रयोग करनेमे आया है। "णियद"का अर्थ नियत कहो, क्रमनियमित कहो, क्रमबद्ध कहो एक ही बात है, कोई भी जन्म या मरण अनियत होता ही नही ऐसा यह गाथामे कहा है।

गाथा ३२२, ऐसा बतलाती है कि जिस विधानसे जिस कालमे जो जन्म या मरण होनेवाला है वही होता ही है, उसको इन्द्र या जिनेन्द्र बदल नही सकते।

६०—इसमे भी वस्तुका स्वरूप क्रमबद्ध है, और केवलज्ञानी ऐसा जानते हैं यह बात सिद्ध होती है, गाथा ३२३, मे 'जोणिच्छयदो' शब्द सूचित करता है कि निश्चयनयमे सब जन्म मरण अपने अपने स्वकालमे ही होते हैं, आगे पीछे नही, तो सिद्ध हुआ कि अकाल मृत्यु भी निश्चयनयमे स्वकालमे होती है परन्तु व्यवहारनयसे आयुकर्मकी उदीरणारूप स्थितिका ज्ञान करानेके लिये उसको 'अकाल मृत्यु' कहते हैं। भगवानके केवलज्ञानमे जिसका जन्म या मरण जिस विधान से अर्थात् जिस निमित्तसे जिस कालमे देखा है, उस ही कालमें नियतरूपसे होता है, अर्थात् कभी भी अनियतरुपसे नहीं होता।

(२) कालका यह विधान कोई भी चेतन या अचेतन पदार्थ फेरनेको समर्थ नही।

(३) सर्व द्रव्योकी सर्व पर्यायोका यह निश्चय स्वरूप है उसको निश्चयस्वरूप कहो, क्रमबद्ध कहो—एक ही बात है। शुद्ध सम्यग्दृष्टि ऐसा जानते है और जो इसमे शका करते हैं वे सब मिथ्यादृष्टि हैं ऐसा अर्थ स्पष्ट शब्दोमे निकलता है, उसको किसी झूठी दलीलसे उडा देना यह सर्वज्ञका और सर्वज्ञके ज्ञानका बडा अनादर है। ये गाथाये अकाल मृत्यु व्यवहारनयका कथन है, निश्चयनयका कथन नही है ऐसा बताती हैं। अकाल मृत्युका सिद्धान्त व्यवहारनयका है अर्थात् उपचार मात्र है, और जो क्रमबद्धके सिद्धान्तका खडन करते है वे निश्चयनय और व्यवहारनयके कथनका क्या तात्पर्य है यह बिलकुल नही समझते। ऐसा सूक्ष्म भेद जिसके ज्ञान मे नही आता उनको सच्चा भेदज्ञान कभी नही हो सकता।

६१—पद्मपुराणकी गाथामेसे कोई ऐसा तात्पर्य निकालते है कि जबतक निमित्त–उपादान अतरग–बहिरग सब कारण नही बनते तबतक कोई कार्य नही बनता, तो उनकी यह मान्यता गलत है। किस समयमे कार्य नही होता ? हर समयमे अपना स्वउचित कार्य होता ही है, नही होता ऐसा बनता ही नही। निमित्त भी उस समय होता ही है निमित्त न मिले तबतक कार्य नही होता ऐसे कथनको वस्तु स्वरूप मान लेना गलत है। निमित्त कारणको नही माननेवालेके लिये (निमित्त कारण सम्बन्धी अज्ञान मिटानेके लिये) ऐसा हेतु बताना दूसरी बात है और उसको वस्तुस्वरूप मान लेना दूसरी बात है। ऐसा सूक्ष्म भेद जिसके ज्ञानमे नही आता उसको कभी सच्चा भेद-विज्ञान नही हो सकता।

६२—अज्ञानी तो पाँच समवाय कारणोमेसे एक नियतिको ही मानते हैं। सच्चा जैन धर्मी पाँचो समवायोंको ही मानता है। सिर्फ

एकको कभी नही मानता। और अंतरग कारण की जब योग्यता हो तब बहिरग निमित्त कारण नही होते है ऐसी मान्यता गलत है।

हर समय उचित उपादान व उचित निमित्तका मेल

६३—अनादिसे अनन्त कालतक हर समयमे पर्याय होती है, उस पर्यायके लिये हर समयमे उपादान कारण और निमित्त कारण दोनो होते ही हैं; ऐसी किस समयकी उत्पाद व्ययरूप पर्याय है कि जिसके लिये निमित्त न हो? वस्तुका स्वरूप तो ऐसा ही है हर समय उचित उपादान और उचित निमित्त होते ही है। श्री प्रवचनसार गाथा २३९ की टीकामे लिखा है कि **हर एक द्रव्यकी भूत, वर्तमान भावी स्वोचित पर्याय होती है।** और आत्माका स्वभाव तीनो कालकी स्वोचित पर्यायो सहित समस्त द्रव्योको जाननेका है, किसीकी भी अनिश्चित पर्याय होतो है ऐसा मानना गलत है। सर्व द्रव्योकी सब पर्यायें हर समयमे **स्व-उचित ही होती हैं। और उनके लिए उचित बहिरंग साधनोंकी सन्निधि हर समयमें हरेक पर्यायमें होती है।** ऐसा प्रवचनसारकी ९५ वी गाथामे बताया है।

६४—प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय स्व-उचित ही होती है, और उसके स्वउचित ही निमित्त होते है, इसलिये शास्त्रोंमे अतरग और बहिरग दोनो कारण उचितरूपमे हरेक समयमे होते है ऐसा कहा है, किसी भी अतरग कारणको बहिरंग कारणकी राह देखनी पडे ऐसा कभी नही है। उपादानके कार्यमे निमित्त उपस्थित नही है ऐसा माननेवाला भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य और श्री अमृतचन्द्राचार्यजीका अनुयायी नही है।

जो स्वयं उदीरणाके योग्य हो उसकी ही उदीरणा होती है

६५—श्री दीपचन्दजी कृत भावदीपिका पृ० २२३ मैं उदीरणा मरणके सम्बन्धमे लिखा है कि "बहुरि खानपानादिक न मिलने थकी, वा रोगादिक होते औषधादि प्रतिकारनिके न मिलने थकी वा अन्यथा

होने योग्य है इसलिये होती है वह भी जीवके उदीरणा योग्य भाव हुए तब आयुकर्मकी उदीरणा अपनी योग्यतासे स्वयं होती है, इस प्रकार दोनोका परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव असद्भूत व्यवहारनयसे है। किन्तु कर्मकी उदीरणाने जीवमे कुछ किया है और जीवका उदीरणारूप भाव हुआ उससे वास्तवमे कर्मकी उदीरणा हुई ऐसा मानना वह दो द्रव्योकी एकता बुद्धि है उसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यने दो क्रियावादी कहा है।

निमित्त उपादानमें गुण-दोष करनेमें असमर्थ ही है

७०—समयसारकी गाथा १०८मे लिखा है कि निमित्तउपादानमे कुछ भी गुणदोष उत्पन्न नही कर सकते किन्तु निमित्तसे गुण दोष उत्पन्न हुआ वह निमित्तका ज्ञान करानेके लिये उपचार मात्र कथन है, ऐसा स्पष्ट कथन करनेपर भी जो कोई ऐसा मान लेवे कि निमित्तके कारणसे उपादानके कार्यमे कुछ लाभ या नुकसान वास्तवमे होता है तो वह जिनमतसे बाहर है।

हेतु हेतुमत भाव

७१—इस सम्बन्धमे समयसार गाथा १०८ की टीकामे जयसेनाचार्य कहते हैं कि, "यहाँ शिष्यने शका की है कि आपने इस बातका व्याख्यान बारम्बार किया है कि "निश्चय करके यह आत्मा द्रव्य कर्मोंको नही करता है, इस कथनसे ही द्विक्रियावादीका निराकरण सिद्ध होता है, फिर भी इसी अर्थको दृढ करना पिष्टपेषण मात्र है। इसके समाधानमें आचार्य कहते हैं कि ऐसा नही है, हेतुभाव और हेतुमतभावका व्याख्यान बतलानेके लिए ऐसा करनेमे कोई दोष नही है क्योकि यह आत्मा द्रव्यकर्मोंका निश्चयसे कर्त्ता नही है, यह तो हेतु है, इसी हेतुसे द्विक्रियावादीका निराकरण सिद्ध होता है। यह हेतुमत भाव है ऐसा जानना चाहिये।"

¹ सर्वार्थसिद्धि (विरचित श्री जगरूपसहाय) अध्याय २, पृष्ठ १३२ मे लिखते हैं कि, "बाह्यस्योपघात निमित्तस्य विष शस्त्रादे सति-

सन्निधाने ह्रस्व भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमायुर्येषाते इमे अपवर्त्यायुष। न अपवर्त्यायुष अनपवर्त्यायुष।"

७२—इस टीकामे बाह्य उपघातका निमित्त विष शस्त्रादिकी निकटता होनेपर जो आयुका ह्रास होवे वे अपवर्त्य हैं। यहाँ पर भी अपवर्त्य कहनेमे अपवत होनेकी योग्यता धराते है ऐसा कहा है।

७३—यहाँ पर भी दो प्रकारका आयुष्य कहा है एक उदीरणा योग्य जिसे अपवर्त्य कहा है और जिसको गोम्मटसारमे सोपक्रम कहा है उसको यहाँ अपवर्त्य कहा है, दोनो शब्द यह बतलाते हैं कि आयुमे दो प्रकारकी योग्यता होती है। जिसने अपवर्त्य आयुका बंध किया है उसके नियममे आयुकर्मकी उदीरणा अपनी योग्यतासे होती है।

७४—दूसरी बात यह सिद्ध होती है कि सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थराजवार्तिकमे निमित्तके लिये "निमित्तस्य सती सन्निधाने" ऐसा शब्द दोनो जगह लिखनेमे आया है यह शब्द बडा उपयोगी है, ये शब्द बताते हैं कि, निमित्त उपादानका कुछ कार्य नही करते किन्तु वे स्वय उपस्थित होते हैं यह बतानेके लिये "सन्निधान" शब्द लिखनेमे आया है।

७५—श्री प्रवचनसारमे श्री अमृतचन्द्राचार्यजी गाथा ९५ पृष्ठ ११४ पर लिखते है कि "तथा द्रव्यमपि समुपात्तप्राक्तनावस्थ समुचित बहिरग साधन सन्निधिसद्भावे" इसका अर्थ—उसीप्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है ऐसा द्रव्य भी जो कि उचित बहिरग साधनोके सान्निध्य (निकटता–हाजरी)के सद्भावमे अनेक प्रकारकी बहुतसी अवस्थाएँ करता है उसे सन्निधान कहो, सन्निधि कहो दोनो एक ही बात है, इसका अर्थ निकटता (हाजरी) है।

७६—तत्त्वार्थसूत्र पर्यायका ज्ञान करानेवाला शास्त्र है, उसमे और प्रवचनसार इन दोनोमे अर्थात् पूज्यपाद आचार्यने भट्ट अकलक-

देवने और अमृतचन्द्राचार्य इन तीनोने निमित्तके लिए 'सन्निधान' शब्दका प्रयोग करके स्पष्टरूपसे ऐसा सूचित किया है कि कार्य होनेके समयमे निमित्त होता है यह बात सत्य है किन्तु उसकी मात्र उपस्थिति, सन्निधि, निकटता, हाजरी होती है, उपादानमे निमित्त कुछ करता है ऐसी बात तत्त्वस्वरूपमे नही है। श्री बनारसीदासजी अपने उपादान-निमित्तके दोहेमे लिखते हैं कि—"उपादान निजगुण जहाँ तहाँ निमित्त पर होय। भेदज्ञान परमाणविधि विरला बूझे कोय ॥४॥

७७—यहाँपर 'निमित्त पर होय' इस शब्दका प्रयोग हुआ है। निमित्त होय ऐसा कहो, उसकी हाजरी कहो, निकटता कहो, उपस्थिति कहो, सन्निधि कहो, उसका सान्निध्य कहो, उसका सन्निधान कहो ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिए इस दोहेमे कहा है कि सम्यक्‌दृष्टि भेदज्ञानी विरला ही होता है और वह तो निमित्त होता है ऐसा मानता है। और इससे यह फलित हुआ कि जो मिथ्यादृष्टि होते हैं वे निमित्त होता है इतना शब्द सुनकर सतुष्ट नही होते हैं। निमित्त कुछ उपादानमे गुण-दोषरूप कार्य करते है ऐसा माननेका दुराग्रह सेवन करते हैं। यहाँ यह साबित किया है कि जहाँपर उपादान कार्यरूप परिणमित होता है वहाँपर पर पदार्थ स्वयमेव निमित्तरूपसे रहते ही हैं उनको मिलाना नही पडता।

७८—बनारसीदासजी ५ वें दोहेमे कहते हैं कि—

"उपादान बल जहँ, तहाँ नहिं निमित्तको दाव।
एक चक्र सों रथ चले, रविको यहै स्वभाव ॥५॥

अर्थ—जहाँ तहाँ उपादानका बल है, निमित्तका दाव नही लगता क्योंकि सूर्यका यही स्वभाव है कि उसका रथ एक चक्रसे चलता है ॥५॥

यहाँ पर उक्त कथन द्वारा यह दिखलाया गया कि उपादान स्वय कार्यरूप परिणत होता है कार्यरूप होनेमे निमित्तका कोई

क्योंकि उसमे स्थान नही है। वह कार्य होनेमे निमित्त है, इतने मात्रसे यह नही कहा जा सकता कि उससे कार्य होता है, क्योंकि ऐसा मानने पर वस्तु व्यवस्थाका कोई नियम नही रहता। तथा फिर छठवे दोहे-मे कहते है कि —

"सधै वस्तु असहाय जहाँ, तहाँ निमित्त है कौन।
ज्यों जहाज परवाहमें तिरै सहज विन पौन ॥६॥

अर्थ —जिस प्रकार पानीके प्रवाहमे जहाज विना पवनके सहज चलता है उसी प्रकार जहाँ प्रत्येक कार्यकी दूसरेकी सहायताके विना सिद्धि होती है वहाँ निमित्त कौन होता है ॥६॥

७९—यहाँ पर वस्तुका असहाय स्वभाव बतलाया है। उत्पाद और व्यय यह पानीका प्रवाह है तथा वस्तु यह जहाज है। जिस प्रकार पानीके प्रवाहमे जहाज स्वभावमे गमन करता है उसी प्रकार वस्तु अपनी योग्यतासे सदृशपने ध्रुव रहकर उत्पाद-व्ययरूप प्रवाहमे बहती है, अन्यकी सहायता मिले तो यह परिणमन हो और अन्यकी सहायता न मिले तो परिणमन न हो ऐसा नहीं है। इसलिये वस्तु स्वभावकी दृष्टिसे प्रत्येक परिणमन स्वकालमे ही होता है ऐसा समझना चाहिए।

८०—प० बनारसीदासजीने उपादान-निमित्तकी चिट्ठीमे लिखा है कि ज्ञानकी पर्यायके लिए ज्ञान उपादान और चारित्र निमित्त है उसमे बताया है कि "अब इनकी व्यवस्था—न ज्ञान चारित्रके आधीन, न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहायरूप यह तो मर्यादा बांधदी"।

८१—यहाँपर भी स्पष्ट लिखा है कि एक द्रव्यकी एक गुणकी पर्याय दूसरे गुणके लिए निमित्त होती है तो भी निमित्तके आधीन उपादानकी पर्याय नही है तो फिर जहाँपर एक द्रव्यकी पर्याय दूसरे द्रव्यकी पर्यायके लिये निमित्त है तो वह किस प्रकार उपादानकी पर्याय-

को अपने आधीन करेगा ? कभी नही करेगा ।

८२—प० बनारसीदासजीने समयसार नाटक सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार पृ० ३७९के ५२ वे दोहेमे कहा है कि,

"करम करै फल भोगवै, जीव अज्ञानी कोई।
यहु कथनी विवहारकी, वस्तु स्वरूप न होई ॥५२॥

यह दोहा ऐसा सूचित करता है कि निमित्तसे उपादानमे कार्य हुआ, ऐसा कहनेकी व्यवहार रीति निमित्तका ज्ञान करानेके लिए है, परन्तु निमित्त उपादानमे कुछ भी विलक्षणता लावे ऐसा वस्तुका स्वरूप नही है ।

८३—इससे सिद्ध होता है कि सर्व मृत्यु स्वकाल मृत्यु ही है । परन्तु सोपक्रम आयु बतलानेके लिए उदीरणा मरणका स्वकाल मृत्यु होनेपर भी सोपक्रम आयुका (उदीरणारूप आयुका) ज्ञान करानेके लिए उसको अकालमृत्यु कहते हैं । कितने ही लोग अकेला अनुपक्रम आयु मानते हैं, कितने ही तीन प्रकारकी आयु मानते हैं अर्थात् किसी-की आयु ऐसी है जो अनुपक्रम हो, किसीकी सोपक्रम हो और किसी-की आयु वृद्धिरूप होजाती है । किंतु जैनमतानुसार दो प्रकारकी आयु मानना सत्य है और इससे विपरीत प्रकारसे मानना असत्य है—यह बतलानेके लिए मूल आराधनामे आश्वास ६ पृ० ६६४ मे लिखा है कि, "चार असत्य वचनोमें पहिला असत्य वचन इस प्रकार समझना चाहिये—अस्तित्वरूप पदार्थका निषेध करना यह प्रथम असत्य वचन का भेद है,—जैसे—मनुष्यको अकाल मृत्यु नही है, आयुष्यकी स्थिति कालको यहाँ काल कहना चाहिये, इस कालसे जो अन्य काल उसको अकाल कहते हैं ।"

८४—"शका—मनुष्यको अकालमे मृत्यु नही है यह कहना सत्य ही है क्योकि भोगभूमिके मनुष्योका आयुष्य विप शस्त्रादिसे कम होता ही नही, अत उनको अकाल मरण नही है यह कहना योग्य ही है ?

उत्तर —नर शब्द सामान्यवाची होनेसे सम्पूर्ण मनुष्योंका वाचक है इसलिये अकाल मरण नही है ऐसा कहना अयोग्य ही है। कितने कर्म भूमिके मनुष्योंमे अकाल मृत्यु है उसका यहाँ निषेध किया है। अत अकालमे मनुष्योंको मरण नही है यह कहना सत् पदार्थका विद्यमान पदार्थका निषेध करनेवाला होनेसे अवश्य असत्य ही है।"

८५—इसमे अकालका अर्थ क्या लिखा है यह समझनेकी जरूरत है, "आयुष्यके स्थिति कालको यहाँ काल कहना चाहिये; इस कालसे जो अन्य काल है उसे अकाल कहते हैं।"

यहाँ उदीरणाको (आयुकी उदीरणा न कहकर) अकाल कहा है परन्तु इस कारणसे उस जीवकी मृत्यु उसी कालमे न होनेवाली थी और होगई ऐसी बात नही है। वही कालमे ही मृत्यु होनेवाली थी।

मोक्षके विषयमें काल और अकालनय

८६—पर्यायको अपने स्वकालमे होनेपर भी उस ही पर्यायको जहाँ जहाँ दूसरी अपेक्षा लागू पडे तहाँ तहाँ उसको अकालसे हुआ ऐसा अनेकान्त भी आगममे आता है, इस विषयमे श्री प्रवचनसारमे नयका परिशिष्ट आया है उसमे साधकको (सम्यक्दृष्टि जीवोको) लागूपडनेवाला ४७ नयोका कथन है।

८७—जिस जीवको मोक्ष होता है उसे एक अपेक्षासे कालनय लागू पडता है तथा उसी न उसी मोक्षको दूसरी अपेक्षासे अकालनय लागू पडता है ऐसा नय न० ३०, ३१ मे कहनेमे आया है।

८८—नय न० ३०मे लिखा है कि, "(वह) आत्म-द्रव्य कालनयसे जिसकी सिद्धि समयपर आधार रखती है ऐसा है, गरमीके दिनोंमे पकनेवाली आम्रफलको भाँति (काल नयसे आत्मद्रव्यकी सिद्धि समय पर आधार रखती है, गरमीके दिनोमे पकनेवाले आमकी भाँति।)"

८९—प्रवचनसारजामे नय नं० ३१ मे लिखा है "कि (वह) आत्मद्रव्य अकालनयसे सिद्धि समयपर आधार नही रखती, कृत्रिम गरमीसे पकाये गये आम्र फलकी भाँति ।

९०—इस विषयमे श्रीसमयसार कलश टीका राजमल्लजी कृत पृ० १० मे लिखा है कि "तिहि माहे अभव्य राशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जावाको अधिकारी नही, भव्य जीव मांहे केता एक जीव मोक्ष जावा योग्य छै । तिहिको मोक्ष पहुँची याको काल परिमाण छै। व्यौरो—यह जीव इतना काल वीत्या मोक्ष जासै इसौ न्यौधु (नोंध) केवलज्ञान मांहे छै ।।" इस प्रकार सिद्ध होनेवाले सब जीवोका निश्चित काल परिमाण नय नं० ३० के अनुसार है।

९१—जो जो जीव मोक्ष पाते हैं उनको जुदी २ अपेक्षासे कालनय तथा अकालनय लागू पडते है क्योकि, (१) साधक जीवको मोक्ष अपने २ कालमे ही होता है । कुछ आगे पीछे नही होता इस सम्बन्धी ज्ञान करानेके लिये ३० वा नय लागू पडता है । साधकदशामे एक ही जीवको एक ही समयमे ये दोनो नय (सब नय) लागू पडते हैं ।

(२) उस जीवका स्वसन्मुखका तीव्र पुरुषार्थ होनेसे संसारकी स्थिति टूट जाती है और कर्मकी स्थिति भी टूट जाती है इसलिये मोक्ष शीघ्र होगया ऐसे कथनके योग्य साधक जीवमे एक धर्म है उसे ३१ वा अकालनय लागू पडता है, इस प्रकार मोक्ष पर्यायरूप वस्तुमे वस्तुत्व निपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियोको प्रकाशित करनेवाला अनेकान्त है ।

इन दोनोमे आम्र फलका दृष्टान्त दिया है, किन्तु यह बात भूलनी नही चाहिये कि दृष्टान्त हमेशा एकदेशी ही होता है, सर्वांशी नही होता है ।।

इस विषयमे (प्रवचनसारकी ४७ नयोंका वर्णन ऊपर प्रवचन,

वाला)-नय प्रज्ञापन शास्त्र गुजराती पृ० २०३ से २१२ तकका विवेचन पढिए ।

६२—शास्त्रका अर्थ करनेकी रीति मोक्षमार्ग प्रकाशकमे पृ० ३६६ मे लिखी है कि, "प्रश्न—जो ऐमे हैं तो जिनमार्ग विषै दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है, सो कैसे ?

ताका समाधान—जिन मार्ग विषै कही तो **निश्चयनयकी मुख्यता** लिये व्याख्यान है ताकौ तो **'सत्यार्थ ऐसे ही है'** ऐसा जानना बहुरि कही **व्यवहारनयकी मुख्यता** लिये व्याख्यान है ताकौं **ऐसे है नांहीं, निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है'** ऐसा जानना। इमप्रकार जाननेका नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है, बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानको **समान सत्यार्थ जान ऐसे भी है और ऐसे भी है ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तने करि तो** दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाही।"

६३—इससे सिद्ध हुआ कि जिसको अकालमृत्यु कहनेमे आता है वह **निश्चयसे ऐसा नहीं है,** निमित्तका ज्ञान करानेके लिये उपचारसे कहनेमे आया है, अगर जो उसका अर्थ निश्चयनयकी तरह करनेमे आवै तो वह **भ्रमरूप अर्थ होजाता है** । इस विषयमे श्रीअमृतचद्राचार्यजी पुरुषार्थसिद्धयुपाय पृ० ५, गाथा ६ और ७ मे लिखते हैं कि,

६४—अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम् ।
व्यवहारमेव केवल मवैति, यस्तस्य देशना नास्ति ॥६॥
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य ।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयता यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥७॥

अर्थ:—मुनिराज अज्ञानीके समझावने कौ असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताकौ उपदेशै है, जो केवल व्यवहार ही कौ जाने हैं ताकौ उपदेश देना योग्य नाही है। बहुरि जैसे जो साचा सिह कौ न जाने,

ताके बिलाव ही सिंह है तैसे जो निश्चयको न जाने ताके व्यवहार ही निश्चयपनाको प्राप्त हो है ।

९५—अकालमृत्यु सिद्ध करनेके लिये शास्त्रमें कहीं आगका दृष्टान्त दिया है वह भी व्यवहारका कथन है इसलिये उसका अर्थ "ऐसा नहीं है" निमित्तादिका ज्ञान करानेके लिये कहा है ऐसा समझना ।

९६—निमित्तका आश्रय करनेवाले ऐसा कहते हैं कि हम कार्य आगे पीछे हो ऐसा कर सकते हैं ।

उदाहरणार्थ—जो आमका फल १५ दिन बाद पकनेवाला होगा उसे हम प्रयत्न विशेषसे १५ दिन पहले पका सकते हैं या जो फल चार दिन बाद नष्ट होनेवाला है उसे हम ठन्डी मशीनमें रखकर अधिक समय तक रक्षित रख सकते हैं । यही हमारी या अन्य निमित्तोंकी सार्थकता है । परन्तु जब हम इस कथन पर विचार करते हैं तो इसमें रंच मात्र भी सार प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जिस प्रकार तिर्यक् प्रचयरूपसे अवस्थित द्रव्यका एक प्रदेश उसीके अन्य प्रदेशोंरूप नहीं हो सकता, एक गुण अन्य गुणरूप नहीं हो सकता अथवा एक द्रव्यके प्रदेश अन्य द्रव्यके प्रदेशोंरूप नहीं हो सकते या एक द्रव्यके गुण अन्य द्रव्यके गुणरूप नहीं हो सकते उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्यकी ऊर्ध्वप्रचयरूपसे अवस्थित पर्यायोंमें भी परिवर्तन होना सम्भव नहीं है । प्रत्येक द्रव्यकी द्रव्यपर्यायें व गुण पर्यायें क्रम हैं, उनमेंसे जिस पर्यायका जो स्वकाल है उसके प्राप्त होने पर ही वह पर्याय होती है ।

९७—यद्यपि ऊपरी दृष्टिसे विचार करने पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जो आमफल १५ दिनके बाद पकनेवाला था उसे हमने प्रयोग विशेषसे १५ दिन पहले पका लिया । पर विचार तो कीजिये कि इन १५ दिनोंके भीतर जो आमफलकी पर्यायें होनेवाली थीं जो कि आपके प्रयोग विशेषसे नहीं हुईं तो उनका क्या हुआ ? वे बिना

हुए ही अतीत होगईं या आगे होगीं ? बिना हुए वे अतीत होगईं यह कहना तो सभव नही है, क्योकि जो वस्तु हुई ही नही वह अतीत कैसे हो सकती है ? आगे होगी यह कहना भी सभव नही है, क्योकि ऐसा मानने पर किसी भी पर्यायका स्वकाल नही वन सकेगा। यह केवल एक पर्यायका प्रश्न नही है किन्तु उसके बाद आनेवाली अनन्त पर्यायोका यह प्रश्न है, क्योकि किसी भी एक विवक्षित पर्यायके स्व-कालमे न होनेसे सभी जीवो और पुद्गलोकी पर्यायोके स्वकालका नियम नही रहता। इतना ही नही किन्तु अकालपाक आदिके आश्रय-से जिन पर्यायोका हम बीचमे होना मान लेते हैं उनका अभाव हो जानेसे सब द्रव्योकी पर्यायें कालद्रव्यकी पर्यायोंके समान है यह व्यवस्था नष्ट हो जाती है, जो कि युक्त नही है। जब यह स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्यका उत्पाद अपने २ उपादानके ही अनुसार होता है ऐसी अवस्थामे इन निमित्तोके अनुसार भी आगे पीछे कार्योंका परिणमन मानना नितान्त असगत है।

९८—इसी सत्यको ध्यानमे रखकर आचार्य श्रीकुन्दकुन्दने समयसारमे कहा है कि,

"अण्ण दविएण अण्ण दव्वस्स ण कीरए गुणुप्पा ओ।
तम्हा उसव्व दव्वा उप्पज्जते सहावेण ॥३७२॥"

अर्थः—अन्य द्रव्यके द्वारा (निमित्त द्वारा) अन्य द्रव्यके गुण (विशेषता)का उत्पाद नही किया जा सकता इसलिये सभी द्रव्य अपने २ स्वभावसे उत्पन्न होते हैं ॥३७२॥

९९—श्रीसमयसारकी १०८ गाथामे भी कहते है कि निमित्त-से उपादानके कार्यमे कुछ गुण दोष हुआ यह कथन सत्य नही है, उपचार मात्र है, उपचार वस्तुका स्वरूप नही है। परन्तु निमित्त-का ज्ञान कराता है।

कथन करनेकी दो रीतिया हैं (१) उपादानकी अपेक्षासे (२) निमित्तकी अपेक्षासे। उपादानकी अपेक्षाको निश्चयका कथन कहते

हैं और निमित्तकी अपेक्षाको व्यवहार कथन कहते हैं ।

१००—इसलिये जब उपादानकी अपेक्षासे कथन किया जाता है तब प्रत्येक कार्य स्वकालमे ही होता है ऐसा सिद्धान्त होनेसे इस दृष्टि-मे अकालमरण और अकालपाक जैसी वस्तुको कोई स्थान नही मिलता है और जब निमित्तका ज्ञान कराना हो तब अकालमृत्यु और अकाल-पाक जैसे शब्दोका प्रयोग करनेमे आता है । यह निश्चय-व्यवहारका स्वरूप बतानेकी शैली है, परन्तु इससे कही वस्तु स्वरूप दो प्रकारका नही होजाता । निश्चयसे जो कथन करनेमे आता है वह वस्तु स्वरूप है और निमित्तसे जो कथन करनेमे आता है वह वस्तुस्वरूप तो नही है किन्तु वह निमित्तका ज्ञान कराता है ।

देखो, नयचक्र गाथा २८८मे कहा है कि व्यवहारको निश्चयकी सिद्धिका हेतु जानो ।

१०१—भगवान श्रीकुन्दकुन्दाचार्यको तो सातिशय विवेकज्योति अर्थात् परम भेद विज्ञानका प्रकाश उत्पन्न हुआ था, वे जीवोकी अज्ञा-नताको मिटानेके लिये कहते है कि, "एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ भी नही कर सकता ।" यह कथन जीवोकी अनादिकालसे पर पदार्थो-की कर्त्ताबुद्धि चली आती है यह मिटानेके लिये कहा है तथा अज्ञानी रागको आत्मा मानते हैं वह अज्ञानता मिटानेके लिए राग-की कर्त्ताबुद्धि छुडाना चाहते हैं, परन्तु जिसको यह वचन रुचि-कर नही लगता वह जीव निश्चयनय और व्यवहारनयको, उपा-दान निमित्तका समानरूपसे आश्रय करना चाहते हैं, और जिनको भगवान श्रीकुन्दकुन्दाचार्यका कथन रुचता है उनको पर पदार्थकी और रागकी एकत्वबुद्धि छूट जाती है क्योंकि वे श्री समयसारकी गाथा ११ के कथनानुसार निश्चयनयको भूतार्थ होनेसे आश्रय करने योग्य और व्यवहारनयको (राग, परका कर्त्ता, निमित्त, संयोग, भेद आदिको) आश्रय करने योग्य नहीं मानते हैं । [व्यवहारनयका विषय जाननेके लिये आश्रय योग्य कहा है किन्तु

धर्म करनेके लिये आश्रय करने योग्य नहीं है ।] [समयसार गाथा ११के भावार्थमें पं० श्री जयचन्द्रजीने कहा है कि '...किन्तु उसका (—व्यवहारनयके आश्रयका) फल संसार ही है]

१०२—पं० टोडरमल्लजी श्रीमोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ३६६ में कहते हैं कि, "बहुरि निश्चय व्यवहार दोऊनिकूं उपादेय मानै है सो भी भ्रम है जातै निश्चय व्यवहारका स्वरूप तो परस्पर विरोध लिए है ।"

१०३—ज्ञान व ज्ञेयका हर समय परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होनेसे दो प्रश्न उठते हैं ।

[१] जिस जीवकी सोपक्रम आयु है उसके आयुकर्मकी उदीरणा होती है, वह उदीरणा अपने स्वकालमे होती है या आगे पीछे होती है ?

[२] उस जीवको आयुकर्मकी उदीरणा कब होगी, यह केवलज्ञानी स्वय जानते हैं या नही ?

[१] प्रश्नका उत्तर —उदीरणा यह पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है सब पर्यायें अपने अपने कालमे होती हैं और आयुकर्मकी उदीरणा होते समय नयी भवरूपी पर्याय उत्पन्न होती है, इस विषयमे पचास्तिकाय गाथा १८ पृष्ठ ३६ मे कहा है कि, "देव, मनुष्यादि पर्यायें उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है क्योंकि वे क्रमवर्ती होनेसे उनका स्वसमय उपस्थित होता है और बीत जाता है।"

१०४—गाथा १६ पृ० ४० मे लिखते हैं कि, "देव जन्मता है और मनुष्य मरता है ऐसा जो कहा जाता है वह (भी) अविरुद्ध है, क्योंकि मर्यादित कालकी देवत्व पर्याय और मनुष्यत्व पर्यायको रचनेवाले देवगति नामकर्म और मनुष्यगति नामकर्म मात्र उतने काल

जितने ही होते है" इसी गाथाकी टीका पृ० ४० मे जयसेनाचार्य कहते हैं कि, "तथा वेणुदण्डस्थानीय जीव नरनारकादिरूपा पर्वस्थानीया अनेकपर्याया स्वकीयायु कर्मोदयकाले विद्यमाना भवन्ति, परकीय-पर्यायकाले चाविद्यमाना भवन्ति" अर्थ —जीव नामके पदार्थमे पर्वोके समान नर नारक आदि अनेक पर्यायें अपने अपने आयुकर्मके उदयके कालमे विद्यमान रहती है। ये ही पर्यायें परस्पर एक दूसरेकी पर्यायके कालमे विद्यमान नही है, सर्व पर्यायें भिन्न २ है।

१०५—इन दो गाथाओकी टीकासे सिद्ध होता है कि नयी गति-की पर्याय अपने २ कालमे ही प्रगट होती है और अपने काल तक ही रहती है और जब नयी गतिकी पर्याय उत्पन्न होती है तब उस गतिकी पर्यायका आयुकर्म भी एक साथ उदयमे आता है, जब आयुकर्मकी एक जीवको उदीरणा हुई तब यह सिद्ध हुआ कि उस जीवकी गति-की पर्याय और उस गतिके रचनेवाले गतिनामकर्मकी स्थिति उतने ही काल पूरती थी (कम ज्यादा नही)।

१०६—इस प्रकार जीवका आयुकर्म भी इतने ही काल तक रहनेवाला था. ऐसा न हो तो नयी गति किस प्रकार उत्पन्न होगी? नयी गति किसी भी अन्य प्रकारसे उत्पन्न नही होगी और जब आयुकर्मकी उदीरणा होती है तब नयी गतिका नामकर्म और नयी गतिका आयुकर्म उदयमे आता है।

१०७—इससे सिद्ध हुआ कि जब नये भवकी गति अपने कालक्रममे उत्पन्न होती है तब पुराने भवकी गति पूरी होनी ही चाहिए, इस प्रकार उदीरणा भी अपने ही क्रममे स्वकालमे ही होती है।

[२] दूसरे प्रश्नका उत्तर —केवलज्ञानी तीनकाल तीनलोकके सर्व द्रव्य-गुण पर्यायोको एक ही साथ एक समयमे जानते है। आयुकर्म-

की उदीरणा और उस जीवकी मृत्यु कब होगी यह वे केवलज्ञानी स्पष्टरूपसे जानते हैं, केवलज्ञानी तो क्या अवधिज्ञानी भी अपने अवधिज्ञानके बल द्वारा (१) जीवका मरणकाल, (२) आयु कर्मका उदीरणा काल, (३) नये भवका उत्पत्ति काल, (४) उसके निमित्तभूत गति नामकर्म, और (५) आयुकर्मका उदयकाल उन सबको जानते हैं।

१०८—इसलिए सिद्ध हुआ कि अकालमृत्यु भी अपने स्वकालमें ही होती है, किन्तु जीवके आयुकर्मका बंध उदयरूप नहीं, किन्तु उदीरणारूपसे परिणमन होनेवाला था, इतना निमित्तका ज्ञान करानेके लिए उसको 'अकाल मृत्यु' उपचारसे कहा है।

अब मूल प्रश्न १ 'अ' का उत्तर:—

ऊपरके विवेचनसे इस प्रश्नका सर्व उत्तर सरल होजाता है, वह निम्नप्रकार है। (क्रमशः)

सैद्धान्तिक चर्चा

लेखांक ३ गतांक नं० २१८ से चालू

[लौकिक व्यवहारी जनके अभिप्राय अपेक्षा सोपक्रम आयुके अंतको अकालमृत्यु या अक्रमिक कहनेमें आता है किन्तु सर्वज्ञ वीतरागके ज्ञान अपेक्षा तथा ज्ञेय अपेक्षासे वास्तविकता देखें तो सोपक्रम आयु जो व्यवहारनयका विषय है वह भी क्रम निश्चित् क्रमवद्ध ही है अक्रम नहीं है इत्यादि विषयमें हमारे माननीय, आदरणीय श्री रामजीभाई दोशी-ने निम्नप्रकार शास्त्राधारसे विस्तृत वर्णन किये हैं वह २०० पत्रका लेख है क्रमशः छपते रहेंगे, जिसमें अपूर्व तत्त्वज्ञानकी जिज्ञासा होगी वह मध्यस्थता और धैर्यसे यह लेखमाला पढकर सच्चे समाधानको प्राप्त करेंगे।

[सम्पादक]

[यह उत्तर है]—

१०९—केवली भगवान विश्वके साक्षीपनेके कारण श्रुतज्ञानके अवयवभूत निश्चय-व्यवहारनयके पक्षोंके स्वरूपको जानते हैं, इसलिये वे जानते हैं कि कोई भी पर्याय अक्रमिक नहीं होती परन्तु सर्व पर्यायें क्रमनियमित (क्रमबद्ध) होती हैं इसलिये अकालमृत्युकी पर्याय 'अक्रमिक पर्याय' नहीं है, वे जानते हैं कि सब आयु अपने २ स्वकालमें पूर्ण होती है। और जिस जीवको सोपक्रम आयुकर्मके कारण उसकी उदीरणा हुई है उसके उदीरणारूप कर्मका (अर्थात् निमित्तका) ज्ञान करानेके लिये उसको 'अकालमृत्यु' कहते हैं।

११०—अब इस प्रकार (जैसे ऊपर उत्तर देनेमें आया है, उस प्रकार) न माननेमें आवे और 'अक्रमिक पर्याय' हुई ऐसा माननेका दुराग्रह करे तो नवतत्त्वोंमें किस किस तत्त्वकी भूल हुई यह विचारनेमें आता है।

१११—जीव तत्त्वकी भूल—श्री प्रवचनसार गाथा २०० की टीका पृ० २४३ मे लिखा है कि, "एक ज्ञायक भावका समस्त ज्ञेयोंको जाननेका स्वभाव होनेसे क्रमशः प्रवर्तमान अनंत भूत–वर्तमान–भावी विचित्र पर्याय समूहवाले अगाध स्वभाव और गंभीर समस्त द्रव्यमात्रको मानों वे ज्ञायकमें उत्कीर्ण[1] होगये हों, चित्रित[2] हो गये हों, भीतर घुस[3] गये हों, कीलित[4] होगये हों, डूब गये[5] हों, समा गये[6] हों प्रतिबिम्बित[7] हुए हों इस प्रकार एक क्षणमें ही जो (शुद्धात्मा) प्रत्यक्ष करता है।"

११२—जो जीव ऐसा मानते है कि जीवकी मृत्यु अपने स्वकाल मे नही हुई, अन्य कालमे हुई वे ज्ञायक स्वभावकी जो व्याख्या ऊपर देनेमें आई है उसको मानते नहीं हैं, इसलिये वे आत्माको (जीवको) नहीं मानते हैं वह जीव तत्त्वकी भूल है।

११३—अजीव तत्त्वकी भूल—नये भवकी गतिनामकर्म, भूत आयुकर्मकी उदीरणा और नये भवकी आयुकर्मका उदय एक साथ अपने निश्चित स्वकालमें होता है। यह जो नहीं मानते वे पुद्गल द्रव्यकी पर्याय यथार्थरूपसे नहीं मानते। आयुकर्मकी उदीरणा सोपक्रम आयु होनेसे वास्तवमे अपनी योग्यतासे होती है। उसको नोकर्मरूप बाह्य निमित्त कारणसे हुई ऐसा जो कोई माने तो वह आयुकर्मरूप सूक्ष्म पुद्गलोंकी और नोकर्मरूप अन्य द्रव्योंकी एकता मानते हैं इसलिये वह जीव और एक २ परमाणु द्रव्य स्वतन्त्ररूपसे परिणमन करते हैं ऐसा नही मानकर एक द्रव्यकी पर्याय दूसरे द्रव्यकी पर्यायमे कुछ करती है ऐसा माननेवाला द्विक्रियावादी है, जो अर्हन्तके मतका नही है।

११४—निमित्त उपादानमे कुछ भी करे, लाभ नुकसान करे, सुधार बिगाड़ करे ऐसा माननेवाला भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यका

अनुयायी नही है, क्योकि भगवान श्रीकुन्दकुन्दाचार्य श्री समयसारकी गाथा १०८ मे स्पष्टरूपसे कहते है कि निमित्त उपादानमे कुछ भी बिगाड-सुधार नही कर सकते हैं।

११५—अब विचारिये—कि निमित्त उपादानमे कुछ भी बिगाड-सुधार करे तो उतने अशमे निमित्तको उपादान क्यो नही कहना ? कहना ही चाहिये, उसको निमित्त नही कहना चाहिये।

११६—एक द्रव्यकी पर्यायको दूसरे द्रव्यकी पर्यायका कर्त्तापना होनेमे **सर्वथा विरोध** है। देखिये-प्रवचनसार गाथा १६२ की टीकामे लिखा है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका **कर्त्ता नहीं होता, कारण नहीं होता, और कर्त्ताका प्रयोजक नहीं होता तथा कर्त्ताका अनुमोदक भी कभी नहीं हो सकता। कर्त्ता आदि होनेमें सर्वथा विरोध है।**

११७—आस्रव, बध पुण्य, पापकी भूलें—जिस जीवको जीव और अजीवका भेदविज्ञान नही होता उसको जीव और आस्रव (राग-द्वेष पुण्य-पाप) का भेदविज्ञान नही होता तथा वह आस्रव और जीव-के स्वरूपको एक मानता हैं। इसलिये वह अज्ञानी है।

११८—देखिये—समयसारके कर्त्ता कर्म अधिकारके प्रारम्भमें ६९–७० गाथाकी टीका।

जिसको आस्रवकी भूल होती है उसे पुण्य-पाप रागद्वेप बध सर्व प्रकारके 'विभाव' भावोको अपना 'स्वभाव' भाव माननेकी भूल होती है। सवर निर्जरा तत्त्वकी भूल—जिसको आस्रव तत्त्वकी भूल होती है उसको सवर, निर्जरा तत्त्वकी भूल भी अवश्य ही होती है अर्थात् वे पुण्यसे धर्म मानते हैं और वे निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गके स्वरूपको नही जानते हैं।

पुण्य ही मुक्तिका कारण है ऐसा माननेवाला भगवानके मतसे,

बाहर है ऐसा प्रवचनसारकी गाथा २५६ अध्याय-३, पृ० ३४९ में श्री जयसेनाचार्यने कहा है।

११६—मोक्षतत्त्वकी मूल—मोक्ष कहो या केवलज्ञान कहो एक ही बात है।

(१) प्रवचनसारकी ८० वीं गाथाकी टीकामें कहा है, जो वास्तवमें अरहंतको द्रव्यरूपने, गुणरूपने और पर्यायरूपने जानता है **वह वास्तवमें अपने आत्माको जानता है, क्योंकि दोनोंमें निश्चयसे अंतर नहीं है।"**

(२) श्रीप्रवचनसार गाथा ३८ने कहा है—अरहंतकी केवलज्ञानरूपी पर्याय **सब अविद्यमान पर्यायोंको एक ही साथ स्पष्ट, प्रत्यक्ष युगपत् जानते हैं.** क्योंकि वे सब ज्ञानके **प्रति नियत** हैं।

(३) श्री प्रवचनसार गाथा ३९ने कहा है कि ज्ञान अपने प्रति ज्ञेयको प्रतिनियत न करे (अपनेमें निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने) तो ज्ञानकी दिव्यता क्या?

(४) श्री प्रवचनसार गाथा ३६ में कहा है कि ज्ञान ज्ञेयको परस्पर आलम्बन—निमित्त है।

(५) श्री प्रवचनसार गाथा ५४ में लिखा है कि ज्ञेयाकार ज्ञानका अतिक्रम (उल्लंघन) न करनेसे यथोक्त प्रभावका अनुभव करते हुये (उपर्युक्त पदार्थोंको जानते हुए) कौन रोक सकता है?

(६) श्री प्रवचनसार गाथा ४९ में लिखा है कि ज्ञानका निमित्त सर्व द्रव्य पर्याय है, तथा आगे इसी गाथामें कहा है कि यदि आत्मा सबको न जानता हो तो ज्ञानके परिपूर्ण आत्मसंचेतनका अभाव होनेसे परिपूर्ण एक आत्माका भी ज्ञान सिद्ध न हो।

(७) श्री प्रवचनसार गाथा ४८ में लिखा है कि 'जो सबको नहीं जानता वह एकको अपनेको (पूर्णरीत्या) नहीं जानता।

(८) श्री प्रवचनसार गाथा २८ मे लिखा है कि आत्मा और पदार्थ एक दूसरेमे प्रविष्ट हुए बिना ही समस्त ज्ञेयाकारोके ग्रहण और समर्पण करनेके स्वभाववाले है।

(९) श्री प्रवचनसार गाथा ३८ मे लिखा है कि अविद्यमान पर्यायें भी अपने स्वरूपको अकम्पतया (ज्ञानको) अर्पित करती हुई वे विद्यमान ही हैं।

(१०) श्रीसमयसार कलश २ के भावार्थमे कहा है कि, "वस्तुमे एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, भेदत्व, अभेदत्व, शुद्धत्व, अशुद्धत्व, आदि अनेक धर्म हैं। वे सामान्यरूप धर्म तो वचनगोचर है, किन्तु अन्य विशेषरूप अनन्त धर्म भी हैं जो कि वचनके विषय नही हैं, किन्तु वे ज्ञानगम्य हैं। आत्मा भी वस्तु है उसमे भी अपने अनन्त धर्म हैं।"

१२०—इससे सिद्ध हुआ कि पर्याय शुद्ध हो या अशुद्ध हो वह सब केवलज्ञानका विषय है। इसलिए विकारी पर्यायको अपने स्वकालको छोडकर अन्य कालमे होती है ऐसा माननेवाला केवलज्ञानके स्वरूपको यथार्थरूपसे नही जानता। जो एक भी पर्यायको अनिश्चित और आगे पीछेके कालमे होनेवाली मानता है वह केवलज्ञानके स्वरूपको और केवलज्ञानीको नहीं मानता, इसलिये उसकी मोक्षतत्त्वमे भी भूल होती है।

१२१—प्रश्न—१ वं—श्री कुन्दकुन्द आचार्य उमास्वामी आचार्य आदि द्वारा उल्लेखित 'अकालमृत्यु'की वार्ता सर्वज्ञ वाणीके अनुसार है या कल्पित है?

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर देनेसे पहिले कुछ तात्त्विक विवेचनकी जरूरत है।

१२२—अकालमृत्यु यह करणानुयोगका विषय है उसके सबधमें तत्त्वज्ञानी निम्नप्रकार जानते हैं।

जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर इस करणानुयोगका अभ्यास करते हैं उनको यह विशेषणरूप प्रतीत होता है। जो जीवादिक तत्त्व आप जानता है उन्हींका विशेष निरूपण करणानुयोगमें किया है। उसमें कितने ही विशेषण तो यथावत् निश्चयरूप हैं कितने ही उपचारको लिए हुए व्यवहाररूप हैं कितने ही द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकरूप हैं, कितने ही निमित्त आश्रयादि अपेक्षाको लेकर हैं, इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण कहे हैं। उनको जैसाका तैसा मानता हुआ इस करणानुयोगका अभ्यास करता है। अभ्याससे तत्त्वज्ञान निर्मल होता है। [देखो मोक्षमार्ग प्रकाशक आठवाँ अध्याय पृ० ३२५-३२६ दिल्लीसे प्रकाशित आवृत्ति तीसरी]

'अकालमृत्यु' करणानुयोगकी अपेक्षा 'भगवती आराधना' शास्त्रमें असत्य वचनके प्रकरणमें लेनेमें आया है। यह उपदेश दो प्रकारसे है। एक तो केवल व्यवहारका उपदेश, दूसरा निश्चय सहित व्यवहारका उपदेश। [मोक्षमार्ग प्रकाशक आठवाँ अध्याय पृ० ४०७]

भगवती आराधनामें जो इस विषयमें कथन किया है वह अकेला व्यवहारनयका कथन है।

१२३—'अकालमृत्यु' यह कथन व्यवहारनयका है या निश्चयनयका है प्रथम यह निर्णय करनेकी आवश्यकता है।

'अकाल'का अर्थ 'सोपक्रम आयुकर्मके रजकणोंकी उदीरणा' ऐसा होना है, अत उसको जीवका कहना यह असद्भूत व्यवहारनयका कथन है।

१२४—श्री समयसारजी कर्त्ताकर्म अधिकार गाथा ११६ से १२० तककी (पृ० १११ पर) टीकामें श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि, 'जैसे घड़ेका उपादान कारण मिट्टीका पिंड ही है, जीव नहीं है। जीव तो केवल निमित्त कारण मात्र ही है, यह सर्व कथन हेय तत्त्व

है अर्थात् ग्रहण करने योग्य वस्तुस्वरूप नहीं है । इस कारण पुद्गल-से भिन्न शुद्ध परमात्माकी भावनामे परिणमन करते हुए भेद रहित रत्नत्रयस्वरूप भेदज्ञानसे जानने योग्य चिदानन्दमयी एक स्वभावको रखनेवाला अपना शुद्ध आत्मस्वरूप ही शुद्ध निश्चयसे उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है ।"

१२८—आगे ११२ पृष्ठमे लिखते हैं कि, "यह सर्व कथन व्यवहारनयसे है अत जो शुद्धात्मिक रसका अनुभव करना चाहे उनके लिये हेय है—त्यागने योग्य है । उन्हे तो अभेद रत्नत्रयस्वरूप आत्मज्ञानकी ही शरण लेकर स्वभाव गुप्त रहना योग्य है । इस प्रकार तीन गाथाओका (१) शब्दार्थ कहा गया, इससे तो व्याख्यानमे शब्दार्थ हुआ ऐसा जानना । इसीमे व्यवहार और निश्चयनयसे अर्थ समझाया सो (२) नयार्थ जानना । इसीमे साख्यमतके प्रति यथार्थ मतको कहा सो (३) मतार्थ जानना । तथा आगममे तो यह अर्थ प्रसिद्ध स्वय है ही इससे (४) आगमार्थ हुआ । इस कथन मे हेय और उपादेयका व्याख्यान किया सो (५) भावार्थ जानना ।

इस तरह (१) शब्द, (२) नय, (३) मत, (४) आगम और (५) भाव—इन पाँच अर्थोमे कथन किया । व्याख्यानकालमें सब जगह यथासंभव इसी तरह पाँच अर्थोंसे कथन जानने योग्य है ।

श्री पचास्तिकाय गाथा १, पृ० ६ की टीकामे भी इसी प्रकार पाँच रीतिमे अर्थ करनेको लिखा है ।

बृहत् द्रव्य सग्रह गाथा २ पृ० १० मे लिखा है कि इस तरह शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ भावार्थ यथासभव व्याख्यानके समयमे सब जगह जानना चाहिए ।

परमात्मप्रकाश गाथा १ की टीकामे भी लिखा है कि इसी प्रकार अर्थ करना चाहिए ।

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला भाग ३रा पृ० २१ मे प्रश्न न० ८५ मे जैन शास्त्रोके अर्थ करनेकी रीति बतलाते हुए लिखा है कि (१) शब्दार्थ, (२) नयार्थ, (३) मतार्थ, (४) आगमार्थ, (५) भावार्थसे अर्थ करना चाहिये, तथा पृ० २२ मे प्रश्न ८६ मे परमात्म-प्रकाशका दूसरा श्लोक देकर पाच प्रकारसे अर्थ करके दिखलाया है।

१२६—इसप्रकार 'अकालमृत्यु'का व्यवहारनयसे अर्थ करनेमे कर्मरूप उदीरणाकी स्थितिरूप निमित्त कारणमात्रका ज्ञान कराया है। इसलिए अकालमृत्युका अर्थ इसप्रकार हुआ कि, अकालमृत्यु वास्तवमे अपने स्वकालमे हुई है किन्तु निमित्तका ज्ञान करानेके लिए 'अकाल' ऐसा उपचार कथन है।

१२७—मृत्युके विषयमे श्री समयसारजी (पृ० ३६६) गाथा २४८ व २४९ की टीकामे लिखा है कि, "प्रथम तो जीवोका मरण वास्तवमे अपने आयुकर्मके **क्षयसे** ही होता है। क्योकि अपने आयुकर्मके क्षयके अभावमे मरण होना अशक्य है, **और दूसरेसे दूसरेका स्वआयु-कर्म हरण नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह (स्व-आयुकर्म) अपने उपभोगसे ही क्षयको प्राप्त होता है। इसलिए किसी भी प्रकारसे कोई दूसरा, किसी दूसरेका मरण नहीं कर सकता।** इसलिए 'मैं पर जीवोको मारता हूँ, और पर जीव मुझे मारते हैं' ऐसा अध्यवसाय **ध्रुवरूपसे (नियमसे) अज्ञान है।**"

१२८—इस टीकासे सिद्ध होता है कि कोई दूसरा किसी भी प्रकारसे दूसरेका मरण नही कर सकता है। मरण आयुकर्मके **क्षयसे** ही होता है, आयुकर्मका क्षय, **उदय और उदीरणा** से दो प्रकारका होता है। **उदीरणासे हुआ यह भी आयुकर्मका क्षय है, वास्तवमें किसीकी भी भूज्यमान आयु घटती या बढती नही है किन्तु निरुपक्रम आयुका सोपक्रम आयुसे भेद बतलानेके लिए सोपक्रम**

आयुवाले जीवकी अकालमृत्यु' हुई ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है।

१२६—व्यवहारनयके कथनको अज्ञानी निश्चयनयका कथन मानते है, श्री समयसारजी गाथा ३२४ से ३२७ तककी टीकामे ऐसे अज्ञानी जनको 'व्यवहार विमूढ' कहा है। और ज्ञानी जनको 'निश्चय प्रतिबुद्ध' (निश्चयके ज्ञाता) कहा है।

१३०—श्री समयसारजी ४१४ गाथाके भावार्थमे कहा है कि, ' जो व्यवहारको ही निश्चय मानकर प्रवर्तन करते है वे समयसारका अनुभव नही करते, जो परमार्थको परमार्थ मानकर प्रवर्तन करते हैं वे ही समयसारका अनुभव करते है।" इसलिए अकालमृत्युको निश्चय कथन मानना बडी भ्रमणा है इतने विवेचनमे इस प्रश्नका उत्तर हल हो जाता है, और वह निम्नप्रकार है।

१३१—भावपाहुड गाथा २५–२६–२७ अपमृत्यु अर्थात् कुमरण-का महा दुःखपना बतानेके लिए भगवान कुन्दकुन्दाचार्यने कहा है कि यह सब अज्ञानीको होता है, ज्ञानीको समाधिमरण होता है। इसके लिए भावपाहुड़की ३२वी गाथा आती है। जहां कुमरण और सुमरण दोनोंकी व्याख्या की है।

१३२—सोपक्रम आयु और निरुपक्रम आयुका विषय इन गाथाओंसे बिलकुल पृथक् है वह आयुकर्मकी उदय, उदीरणाके विषय-का ज्ञान करानेके लिए है, जिसको समाधिमरण होता है उसको निरुपक्रम आयु ही होती है, ऐसा नही है। किसी किसी जीवको निरुप-क्रम आयु भी होती है। सोपक्रम भी होती है। भावपाहुड गाथा २५–२६–२७ मे कुमरणका विषय और अनेक प्रकारके निमित्तकी बात लिखी है इस कारणसे वह सोपक्रम आयुका विषय नही हो जाता है।

१३३—कितने ही जीव मानते हैं कि अकालमृत्यु है वह कुमरण है, यह बात झूठी है, क्योकि सम्यक्दृष्टिको भी जिसको नियमसे

समाधिमरण होता है उसके भी अकालमृत्यु होती है। भावपाहुड गाथा २५ मे सक्लेश परिणामसे आयुका क्षय होना कहा है। सक्लेश परिणाम तो अपना भाव है, वह कोई बाह्यका नोकर्मरूप निमित्त है ही नहीं। यह गाथा अकालमृत्युकी है, ऐसा मानना मिथ्या है। यह तो अपमृत्यु अर्थात् कुमरणकी है। अकालमृत्यु तो सम्यग्दृष्टिको भी होती है। देखिये—राजा श्रेणिक सम्यग्दृष्टि था, उसका मरण अकालमृत्यु था, तो भी वह बाल पण्डित मरण होनेसे सुमरण है।

यह पाहुड भावपाहुड नामक अधिकार है इसलिए जीवका कुमरणभाव अज्ञानता सूचक है यह दर्शाता है, और गाथा ३२ मे लिखा है कि, "हे जीव या ससार विषै अनेक जन्मान्तर विषै अन्य कुमरण—मरण जैसे होय तैसे तू मूवा, अब तू जा मरणतैं जन्म मरणका नाश होय ऐसा सुमरण भाय ॥३२॥

१३४—देखिये गाथा २८ मे निगोदिया जीवके मरणकी बात की है, उसके मरणको भी अपमृत्यु कहा है। निगोदिया जीवको कभी भी सोपक्रम आयु होती ही नहीं उसको तो एक अन्तर्मुहूर्तमे ६६३३६ मरण नियमसे होते ही हैं। गाथा २९ मे क्षुद्र भवकी बात की है, वहाँ भी अकालमृत्यु की बात नहीं है। फिर गाथा ३० में ऐसा उपदेश दिया है कि यह सब कुमरण दीर्घ संसारमें रत्नत्रयकी अप्राप्तिसे हुआ है। इसलिए तुम जिनवर कथित रत्नत्रयको आचरण करो ऐसा कहा है। गाथा ३१ मे आत्माके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका स्वरूप बताया है। और गाथा ३२ मे कुमरण और सुमरणका स्वरूप बतलाया है। और सब प्रकारके मरणका भेद प० जयचन्द्रजीने गाथा ३३ की टीकामे बतलाकर कहा है कि, "इनिमैं [1]पडित पडित मरण अर [2]पडित मरण अर [3]बाल पडित मरण यह तीन प्रशस्त सुमरण कहे है, अन्य रीति होय सो कुमरण है।"

विवेकी जनका कर्तव्य है कि शास्त्रका अर्थ उसका यथार्थ आशय=

के अनुसार ही करना चाहिए। उसमे भूल हो जानेसे अपनी आत्माका अकल्याण हो जाता है।

१३५—करणानुयोगके शास्त्रसे भी दो बातें सिद्ध होती हैं (१) जिस भव्य जीवका मोक्ष होनेवाला है, उसके मोक्षके समयको भगवान बराबर जानते है ।

(२) भगवानका केवलज्ञान–केवलदर्शन स्वयम् उत्पन्न हुआ है। स्वयका अर्थ 'अपने आपसे' इसलिए भगवानको 'स्वयभू' कहा है। (देखिये प्रवचनसार गाथा १६ की टीका ।)

१३६—इसमे लिखा है कि मोक्ष होनेके लिए आत्माको निमित्त-रूप कारकका सम्बन्ध है ही नही तथा इसी गाथाकी टीकामे श्री जय-सेनाचार्य कहते हैं कि जो भिन्न कारककी (निमित्तकी) अपेक्षा नही रखते हैं उन्होको 'स्वयभू' कहा है। ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय कर्मके के अभावसे केवलज्ञान–केवलदर्शन हुआ यह परमार्थ कथन है ही नही, क्योकि परमार्थ तो स्वय उत्पन्न होता है। कर्मका अभाव निमित्तमात्र होनेसे निमित्तका ज्ञान करानेके लिए व्यवहारनयसे कहनेमे आता है कि ज्ञानावरणीय–दर्शनावरणीय कर्मके अभावमे केवलज्ञान–केवलदर्शन हुआ, ऐसे कथनका अर्थ ऐसा करना चाहिये कि "ऐसा है ही नही, किन्तु कर्मके अभावरूप निमित्तका ज्ञान करानेके लिए कहा है।"

१३७—श्री पचास्तिकाय गाथा १५० तथा १५१ तथा तत्त्वा-र्थसार गाथा ३१ आदिका अर्थ ऊपरके सिद्धान्तके अनुसार अर्थात् यह व्यवहारनयका कथन होनेसे निमित्तका ज्ञान करानेके लिए उपचारसे अन्यथा निरूपण करता है इसलिये अभूतार्थ है। (दिल्लीसे प्रकाशित मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ३६६)

१३८—व्यवहारनयका कथन वस्तुस्वरूप नही है किन्तु निमित्ता-दिकका ज्ञान करानेके लिये उपचारसे कथन किया है ऐसा जानना,

इसके विरुद्ध अर्थ करना कल्पित अर्थ है। व्यवहारके कथनको निश्चयका कथन माननेवालोको श्रीअमृतचन्द्राचार्यने पुरुषार्थ सिद्धयुपायमें उनको मिथ्यादृष्टि कहा है और उसके लिये (मुनिश्वरोकी) देशना नहीं होती, क्योंकि अज्ञानी व्यवहारको ही निश्चय मान लेते हैं।

१३९—प्रश्न—[१] क:—तथा अकलंकदेव लिखित राजवार्तिकका 'कालानियमात् निर्जरायाः' (अध्याय १ सूत्र ३) वार्तिक (यानी) जीवोकी कर्म निर्जरा तथा कर्म मुक्तिका कोई निश्चित समय नहीं है यह सर्वज्ञकी वाणीके अनुसार है या कल्पित है ?

उत्तर—इस वार्तिकका क्या अर्थ है यह समझनेके लिए इसके आगे पीछेके सम्बन्धका विचार करना ही चाहिए उसका विचार नीचे देनेमे आयगा।

[२] भगवान श्री उमास्वामी आचार्यने तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय दूसरा सूत्र ५३ मे आयुकर्मका विवेचन किया है, 'अकालमृत्यु' शब्दका प्रयोग नहीं किया है।

[३] 'आदि नामसे' किस आचार्यका कथन कहना प्रश्नकार चाहते हैं यह स्पष्ट नही है।

[४] दोनो आचार्योंने 'अकालमृत्यु' शब्दका प्रयोग ही नहीं किया है। तो वह सर्वज्ञकी वाणीके अनुसार है या कल्पित है यह प्रश्न ही नहीं उठता।

[५] विशेष यह समझना है कि किसी भी वीतरागी आचार्यका कथन कल्पित है ऐसा माननेवाला सच्चा जैन कभी नही हो सकता। समस्त सच्चे आचार्योका कथन सर्वज्ञकी वाणीके अनुसार ही है। सर्वज्ञकी वाणीमे दो प्रकारके नयोका कथन आता है, जहाँ निश्चयनयका कथन है उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान करना चाहिए और जहाँ व्यवहारनयका कथन है उसे असत्यार्थ मानकर

उसका श्रद्धान छोड़ना चाहिये अर्थात् निमित्त, भेद—उपचार आदिका ज्ञान करनेके लिये जाननेके लिये कथंचित् भूतार्थ है किन्तु उसका आश्रय छोड़कर अभेद ज्ञायक स्वरूपका आश्रय करने योग्य है इसलिये उसे अभूतार्थ दर्शित समझकर उनका आश्रय छोड़ना चाहिये।

सर्वज्ञता, केवलज्ञान, मोक्षतत्त्वकी पहचान सभी सम्यग्दृष्टिको समान है ज्ञान और ज्ञेयकी प्रत्येक अवस्था सुनिश्चित है

१४०—षट्खण्डागम—धवलाटीका पुस्तक १३ पृ० में भगवान श्री वीरसेनाचार्यने कहा है कि, "स्वयं उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शनसे युक्त भगवान देवलोक और असुरलोक साथ मनुष्यलोककी आगति, गति, चयन, उपपाद, बंध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति युति, अनुभाग, तर्क, कल, मन, मानसिक, भुक्त, कृत, प्रतिसेवित आदि कर्म, अरह कर्म, सब लोकों सब जीवों और सब भावोंको सम्यक् प्रकारसे युगपत् जानते हैं, देखते हैं और विहार करते हैं ॥८२॥

१४१—पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धिमें कहते हैं कि, "जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं, पुद्गल द्रव्य उनसे भी अनन्तगुणा है, उनके अणु और स्कंध ये भेद हैं, धर्म, अधर्म और आकाश ये तिनकर तीन हैं और काल असंख्यात है, इन सब द्रव्योंकी पृथक् पृथक् तीनों कालोंमें होने वाली अनन्तानन्त पर्यायें हैं। इन सबमें केवलज्ञानकी प्रवृत्ति होती है. ऐसा न कोई द्रव्य है और न पर्याय समूह है जो केवलज्ञानके विषयके बाहर हो। वह नियमसे अपरिमित माहात्म्यवाला है।"

१४२—अब देखिये—कर्मको निर्जरा और कर्म मुक्ति यह पुद्गल द्रव्यके पर्यायोंका समूह है, जीवका सादि अनन्त मोक्ष यह जीव द्रव्यकी पर्यायोंका समूह है। सो यह केवलज्ञानके विषयके बाहर नहीं है. किन्तु कोई ऐसा माने कि उसको शुरुआतका समय केवलज्ञानके

वाहर है तो केवलज्ञानको अपरिमित माहात्म्य ही नही रहता है, और जो ऐसा माने कि केवलज्ञानका विषय है तो मोक्षका पहला समय निश्चित हुआ, अनिश्चित नहीं रहा।

१४३—श्री समन्तभद्रस्वामी स्वयभूस्तोत्रमे मुनिसुव्रत भगवानकी स्तुति करते हुए काव्य ११४ मे कहते हैं कि,

"जनन व्यय ध्रौव्य लक्षणं जगत प्रतिक्षणं
चित अचित आदिसे पूर्ण यह हरक्षणं।
यह कथन आपका चिह्न सर्वज्ञका।
है वचन आपका आप्त उत्कृष्टका ॥११४॥ (भाषानुवाद)

यहाँ भी ऐसा कहनेमे आया है कि जगतके प्रत्येक क्षणका (अनादि अनतकाल तक प्रत्येक क्षणका) चेतन, अचेतन शुद्ध-अशुद्ध हरेक पर्यायका उत्पाद और व्यय भगवानके ज्ञानमे आता है यह सर्वज्ञका चिन्ह है। यहाँ मोक्षके उत्पादका प्रथम समय निश्चित होगया और निश्चित न मानो तो सर्वज्ञपनाका लोप हो जाता है, सर्वज्ञका लोप होनेसे आत्माका लोप होजाता है, क्योंकि हरेक जीवमे सर्वज्ञशक्ति नामका एक गुण है।

१४४—केवलज्ञानमे जीवोकी कर्म निर्जरा और कर्म मुक्तिका समय वरावर जाननेमे आता है इसलिए उसका समय निश्चित नही है ऐसा मानना यह केवलज्ञानके स्वरूपका अनादर है। और भगवान अकलकदेव केवलज्ञानके स्वरूपका अनादर करे ऐसा नही वन सकता।

१४५—अव देखिये—भगवान ऋषभदेवने मारीचके जीवको जिसका तमाम चौथा काल वाकी था, सैकडो भव करने थे, वताया था कि यह जीव चौथे कालके अन्तमे २४ वा तीर्थंकर होगा।

१४६—अनादिकालके प्रवाहरूपसे चले आते हुए सव तीर्थंकरोने भूतकालके चौवीस तीर्थंकरोका तथा वर्तमान चौवीस तीर्थंकरोका तथा भविष्यके चौवीस तीर्थंकरोका नाम, मोक्षका समय आदि, क्या नही

जाना था ? तो शास्त्रोमे यह सब आया कहा से ? और कहा किसने ?

१४७—भगवान नेमिनाथने, वासुदेव श्रीकृष्णका मरण कब होगा, बताया था यह भी शास्त्रमे कहा है जैसा उन्होने कहा वैसा ही मरण हुआ, और वह मरण 'अकालमृत्यु' था। उसको अकालमृत्यु न मानना बडी भूल है—आगम विरुद्ध है। अकालमृत्युका निश्चित समय जो नेमिनाथ भगवानके ज्ञानमे नही था तो कहा कैसे ? भगवानने द्वारकाका भविष्य बताते हुए कहा था कि १२ वर्षके बाद द्वीपायन मुनिके निमित्तसे द्वारकामे आग लगेगी और उसमे केवल तुम दो भाई ही बचेंगे, बाकी सब नष्ट हो जायेंगे, क्या यह सख्यावध जीवोका अकालमृत्युका निश्चित समय और निश्चित निमित्त, भगवानके केवलज्ञानमे नही देखा गया था ? जो एक अकालमृत्युका निश्चित समय हो तो अनादि अनन्त काल तक जितने अकालमृत्यु होगे उन सबका समय निश्चित होगया। वास्तवमे किसी भी पर्यायका समय निश्चित न हो तो **उसका ऊर्ध्वप्रचय किसप्रकार बनेगा ? और वह भगवानके ज्ञानके विषयके बाहर हो जायगा।** ऐसा कोई भी द्रव्य नही है और कोई पर्यायोका समूह भी नही है जो केवलज्ञानके बाहर हो। वे पर्यायें चाहे विकारी हो, चाहे अविकारी हो, परिपूर्ण ज्ञान भविष्यकी पर्यायको वर्तमानमे न जाने तो उसको ज्ञान कहेगा कौन ? वह स्वय ज्ञान ही नही रहेगा।

१४८—श्री प्रवचनसार गाथा ३७ की टीकामे लिखा है कि, "हरएक द्रव्यके पर्यायोकी उत्पत्तिकी मर्यादा तीनो कालकी मर्यादा जितनी है और वह सब पर्यायोका विशिष्ट लक्षण एक ही समयमें ज्ञानके जाननेमे आता है, वहाँ पृ० ४४ पर लिखा है कि, "(जीवादिक) समस्त द्रव्य जातियोकी पर्यायोकी उत्पत्तिकी मर्यादा तीनो कालकी मर्यादा जितनी होनेसे (अर्थात् वे तीनो कालमे उत्पन्न हुआ करती हैं इसलिये) उनकी (उन समस्त द्रव्य जातियोकी) **क्रमपूर्वक तपती हुई**

स्वरूप सम्पदावाली (एकके बाद दूसरी प्रगट होनेवाली) विद्यमानता और अविद्यमानताको प्राप्त जो जितनी पर्यायें हैं, वे सब तात्कालिक (वर्तमान कालीन) पर्यायोंकी भाँति अत्यन्त मिश्रित होनेपर भी सब पर्यायोंके विशिष्ट लक्षण स्पष्ट ज्ञात हो इसप्रकार, एक क्षणमें ही ज्ञान मन्दिरमें स्थितिको प्राप्त होती है। यह (तीनो कालकी पर्यायोका वर्तमान पर्यायोकी भाँति ज्ञानमे ज्ञात होना) अयुक्त नही है, क्योंकि —

१४९—[१] उसका दृष्टके साथ (जगतमे जो दिखाई देता है–अनुभवमे आता है, उसके साथ) अविरोध है। (जगतमे) दिखाई देता है कि छद्मस्थके भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुए ज्ञान उसके आकारका अवलम्बन करता है इसीप्रकार भूत और भविष्यत वस्तुका चिंतवन करते हुए (भी) ज्ञान उसके आकारका अवलम्बन करता है।

[२] और ज्ञान चित्रपटके समान है, जैसे चित्रपटमे अतीत, अनागत व वतमान वस्तुओके आलेख्याकार (आलेखन योग्य चित्रित करने योग्य) साक्षात् एक क्षणमे ही भासित होते है, इस प्रकार ज्ञानरूपी भित्तिमें (ज्ञानभूमिकामे, ज्ञानपटमे) भी अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायोंके ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षणमें ही भासित होते हैं।

[३] और, सर्व ज्ञेयाकारोंकी तात्कालिकता (वर्तमान, साम्प्रतिकता) अविरुद्ध है जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके आलेख्याकार वर्तमान ही है, इसी प्रकार अतीत और अनागत पर्यायोंके ज्ञेयाकार वर्तमान ही है।"

१५०—किसी भी पर्यायका निश्चित् समय नही है ऐसे कथन-मात्रसे और प्रतिज्ञामात्रसे यह सिद्ध नही हो सकता। इसके लिए हेतु,

आगमका आधार दोनो बताना चाहिए। आगममे किसी भी स्थलपर क्रमवद्ध और अक्रमवद्ध ऐसी दो प्रकारकी पर्यायें होती हैं ऐसा नही कहा है और यह न्यायसे भी सिद्ध नही है।

१५१—ऐसा तो वे कबूल करते है कि, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और कालकी सर्व पर्यायें क्रमबद्ध हैं, तो ऐसा माननेवालेको हम प्रश्न पूछते हैं कि धर्मादि चारों द्रव्योंमें तुम्हारे माने हुए 'क्रमवद्ध और अक्रमबद्ध (अनिश्चित, आगे पीछे, उल्टे-सीधे) रूप अनेकात' कहा चला गया ?

१५२—अब देखिये—इन चारो द्रव्योकी पर्याये क्रमबद्ध माननेसे सब द्रव्योकी पर्यायें क्रमवद्ध सिद्ध हो जाती है वह इस प्रकार है।

१५३—धर्मास्तिकाय अनादिकालसे अनन्तकाल तक किस किस शुद्ध-अशुद्ध जीवोका और पुद्गलोका गमनमे निमित्त होगा यह पर्याय निश्चित होगई।

१५४—इसीप्रकार अधर्मास्तिकाय जिनको वह निमित्त होता है ऐसे शुद्ध और अशुद्ध जीव व पुद्गल कब स्थिर होगे यह भी निश्चित हो गया और इससे विकारी और अविकारी जीवो और पुद्गलोकी गमन करनेकी और स्थिर होनेकी पर्यायें क्रमबद्ध सिद्ध होगई, और मोक्षगामीके गमनके समयमें ऊर्ध्वगमनकी पर्याय और लोकके अन्तमें उसकी स्थिरताका तथा सब पर्यायोंका निश्चित् समय सिद्ध होगया। इसप्रकार आकाश शुद्ध-अशुद्ध सब द्रव्योंको किस २ जगह किस २ समयमें अवगाहनमे निमित्त होगा यह भी आकाश द्रव्यकी पर्याय क्रमवद्ध माननेसे क्रमवद्ध सिद्ध हो गया।

काल द्रव्य —स्वय परिणमते हुए शुद्ध और अशुद्ध सब द्रव्योके परिणमनमे कालद्रव्य निमित्त है इसलिये अशुद्ध प्रत्येक जीव और पुद्गल द्रव्योकी पर्यायोके परिणमनका काल भी क्रमबद्ध सिद्ध होगया।

ऐसा कहते हैं कि भूतकालकी पर्यायें क्रमवद्ध है, सिद्ध जीवकी

पर्यायें सिद्ध हुए उस समयसे अनन्तकाल तक क्रमवद्ध है, तो उससे यह भी सिद्ध होगया कि शुद्ध और अशुद्ध दोनो प्रकारकी पर्यायें क्रमवद्ध हैं, क्योंकि भूतकालकी पर्यायें हैं वह भूतकाल होनेके पहिले वर्तमान थी और वर्तमान होनेके पहिले भविष्यकी थी, इससे वर्तमान पर्याय तथा भविष्यकी पर्यायें भी क्रमवद्ध सिद्ध होगई, मोक्षकी पहले समयकी पर्याय भी क्रमवद्ध और निश्चित होगई ऐसा (न्यायसे) सिद्ध हुवा।

१५५—जिन जीवोको परद्रव्यकी कर्त्ताबुद्धि और रागकी कर्त्ताबुद्धि नही छोडनी है उनको क्रमवद्ध पर्यायका यथार्थरूप माननेमे सम्यक् पुरुपार्थ होनेपर भी उसका दर्शन नही होता इसलिये उसमे अशुद्ध जीवकी अशुद्ध पर्यायें और पुद्गलकी अशुद्ध पर्यायें केवलज्ञानका विषय नही हो सकती ऐसी कल्पना उत्पन्न हुई इसलिये उन्होंने अशुद्ध जीव और अशुद्ध पुद्गलकी पर्यायके लिये कल्पित अनेकान्तकी रचना की।

१५६—भविष्यकी पर्याय ज्ञेय है या अज्ञेय है ? अज्ञेय तो जगतका कोई पदार्थ नही हो सकता, भविष्यकी अशुद्ध पर्याय ज्ञेय है ऐसा माननेमे आवे तो क्रमवद्धकी सिद्धि होजाती है। कोई भी पर्याय ज्ञेय होवे और उसका समय अनिश्चित होवे ऐसा नही हो सकता क्योंकि ऐसा होनेसे वह ज्ञानका विषय ही नही हो सकता।

१५७—यदि मोक्षका समय अनिश्चित है ऐसा माना जावे तो ६ महीना और ८ समयमे ६०८ जीव मोक्ष जायेंगे और इतने ही समयमे इतने ही नित्य निगोदसे निकलेंगे और व्यवहार राशिकी सख्या मोक्ष होनेपर भी इतनीकी इतनी ही रहेगी यह कैसे बन सकता है ? यह सर्वज्ञ और क्रमबद्ध मानने पर ही सिद्ध होता है। इस विषयमे श्री समयसार राजमलजीकृत कलशटीका पृष्ठ १० मे लिखा है कि, "तिहि माहे अभव्य राशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जीवाकौ अधिकारी नाही। भव्य जीव मांहे केता एक जीव मोक्ष जावा योग्य है। तिहिकौं

मोक्ष पहुँचि याको काल परिमाण है। ब्यौरो—यह जीव इतना काल वीत्या मोक्ष जासै इसौ न्यौधु (नोंध) केवलज्ञान माहे छै ।।"
देखिये पुरुषार्थपूर्वक मोक्षका समय अनिश्चित नहि है—निश्चित ही है ऐसा अनेकान्त स्पष्टतया सिद्ध हुआ ।

राजा श्रेणिकका जीव नरकमे गया वहाँ पर ८४ हजार वर्षकी आयु है, और वहाँसे निकलकर यहाँ प्रथम तीर्थंकर होंगे। यह **सब जीवकी अशुद्ध पर्यायें हैं** और इससमय उसके साथ सयोगरूप आठ कर्मोकी अवस्था है वह भी **पुद्गल द्रव्यकी अशुद्ध पर्यायें हैं** वे सब अनिश्चित है ऐसा माननेवाला जैन धर्मसे बाहर है। अवधिज्ञानका विषय पुद्गल तथा स्कध दोनो हैं, अवधिज्ञानी सुनिश्चिततया उसकी भूत, भविष्यत्, वर्तमान जानते हैं। पर्यायोको यथार्थरूपसे **जाने तो** वह अशुद्ध पर्यायोका भी निश्चित ममय बताते है कि अनिश्चित, इसका थोडा विचार कीजिये ।

१५८—तीर्थंकर भगवान माताके गर्भमे कब आयेंगे इसका निर्णय अवधिज्ञानी बराबर कर लेते हैं, माताका शरीर तथा उसका गर्भस्थान पुद्गलकी अशुद्ध पर्यायें हैं। भगवानका आना वह भी अशुद्ध जीवकी एव कार्माण-तैजस शरीरकी पर्याये है। उनका समय निश्चित न हो तो माताके गर्भमे अमुक ममयमें आयेगा यह किस ज्ञानसे निश्चित हुआ ? पहिले, दूसरे, तीमरे नरकसे आनेवाला जीव यदि तीर्थंकरके रूपमे माताके पेटमे (गर्भमे) आनेवाला हो तो उसको छ महीना पहले नरकमे उसे कोई मारेगा ही नही और वहाँ रत्नोकी वृष्टि छ मास तक होगी ही होगी यह बात अनेक जीवो और पुद्गलोकी अशुद्ध पर्यायोका निश्चित समय नही बताते, तो क्या बताते हैं।

१५९—धवला टीका पुस्तक १३ सूत्र ८१-८२ द्वारा कहा है कि "आगति, गति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, युति, अनुभाग, तर्क, कल, मन, मानसिक, भुक्त, कृत प्रतिसेवित आदि

सम्यग्दर्शनादि त्रय जे है, तिनतै मोक्ष कह्यौ है, तहाँ जो प्रथम है सो काहेतैं उत्पन्न होय है, ऐसा प्रश्नतैं होता सता निसर्गतैं तथा अधिगमतैं उत्पन्न होय है यो अर्थ इहा कहियो है। अर जो ज्ञानचारित रहित केवल निसर्गज तथा अधिगमज सम्यग्दर्शनतैं ही मोक्ष इष्ट होय तो भव्यके कालकरि मोक्षकी उत्पत्ति है यो कहनो युक्त होय सो यो अर्थ इहा नहि विवक्षित है कि कहनेकी इच्छाका विषयरूप नाही है अथवा जैसे कुरुक्षेत्रमे कहूँ कहूँ कनक बाह्य पुरुषार्थरूप प्रयत्नका अभावतैं ही उत्पन्न होय है, तैसैं बाह्य पुरुषका उपदेश पूर्वक जीवादिकनका जानन बिना जो उत्पन्न होय सो निसर्गज है अर जैसे कनक पाषाण विधिपूर्वक उपायनै जाननेवाला पुरुषका प्रयोगकी है अपेक्षा जाकै, ऐसो कनक भावनै प्राप्त होय है तैसे जो सम्यग्दर्शन **विधिपूर्वक उपायकुं जाननेवाला मनुष्यका मिलापतैं** जीवादिक पदार्थनिका तत्त्वनै जाननेकी है अपेक्षा जाके ऐसो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होय सो अधिगमज सम्यग्दर्शन है, यो अर्थ विवक्षित है अर इनि दोऊ भेदनिमे एक भेदको अभाव नहि है यातै विवक्षितका अपरिज्ञानतैं अधिगमको अभाव है ऐसैं कहियो हो तो सो सम्यक् नही है ॥८॥

१६२—वार्तिक कालानियमाच्च निर्जरायाः ॥९॥
अर्थ—अथवा निर्जराके कालको नियम नही है।

टीकार्थ—जीवनिके समस्त कर्मकी निर्जरापूर्वक मोक्ष जो है ताके कालको नियम नही है यातैं क्योकि कितनेक भव्य तो सख्यात कालकरि सिद्ध होंहिगे अर कितनेक भव्य असख्यातकालकरि सिद्ध होंहिगे अर कितनेक भव्य अनन्तकालकरि सिद्ध होंहिगे **अर और अनन्तानन्त कालकरि भी सिद्ध नहीं होंहिंगे तातैं भव्यके कालकरि मोक्षकी उत्पत्ति है ऐसैं कहियो हुतो सो युक्त नहीं है ॥९॥**

अब उसका विवेचन ७ वाँ वार्तिकमे प्रश्नकार अपने प्रश्नमे तथा उसकी टीकामे कहते हैं कि भव्यके कालकरि मोक्षकी उत्पत्ति है यातै

अधिगम सम्यग्दर्शनका अभाव है। अब इस प्रश्नमें कितनी भूल है यह वार्तिक ८ तथा ९ में बताया है।

प्रथम भूल :—

१६३—**सब भव्य जीवोंके कालकरि मोक्षकी उत्पत्ति है, यह सिद्धान्त झूठ है क्योंकि इस सिद्धान्तको माननेसे सर्व भव्य जीवोंको मोक्ष होगा ही होगा किन्तु यह बात सच्ची नहीं है, क्योंकि अनन्तानन्त काल तक अनेक भव्य जीवोंकी मुक्ति नहीं होगी** अर्थात् सब भव्योंको कालकरि मोक्षकी उत्पत्ति है ऐसा जो सिद्धांत प्रश्नकारने प्रतिपादन किया है वह झूठा है। श्री समयसार कलश टीका राजमलजी कृत पृष्ठ १० में लिखा है कि, जिस जीवके मोक्ष होनेवाला है उसकी नोंध केवलज्ञानमें है।

१६४—इससे यह सिद्ध हुआ कि **सब भव्य जीव मोक्ष जाते हैं यह बात सच्ची नहीं है** इसलिये केवलीके ज्ञानमें सब भव्य जीवोंके कालकरि मोक्षकी उत्पत्ति हो, ऐसा जाननेमें क्यों आवे? कभी भी जाननेमें नहीं आवे, क्योंकि केवली भगवान जैसा हो वैसा ही जानते हैं।

१६५—अब प्रश्नका उत्तर ८ वें वार्तिकमें इस प्रकार दिया है कि—सूत्रकारके कहनेका परिज्ञान न होनेसे यह प्रश्न शंकाकारने किया है क्योंकि सूत्रकारने तो सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे भव्योंको मोक्ष होना कहा है, काललब्धिसे सब भव्य जीवोंका मोक्ष होगा ऐसा नहीं कहा है।

१६६—आठवें वार्तिकमें तो सम्यग्दर्शन किस प्रकारसे उत्पन्न हो यह बतलाया है। इसलिये भव्योंको कालकरि मोक्षकी उत्पत्ति होगी ही, ऐसा कहना युक्त नहीं है, और इतना ही नहीं परन्तु सब भव्योंको कालकरि मोक्षकी उत्पत्ति होगी ऐसा सूत्रकारके कहनेका आशय है ही नहीं। यहाँ पर कहनेका हेतु यह है कि किसी जीवको

वर्तमानमे गुरुके उपदेश विना पूर्वके सस्कारवश सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, और जिसको ऐसा सस्कार नही है उसको **विधिपूर्वक सम्यक्ज्ञानी जीवके उपदेशसे,** जीवादिक पदार्थोके तत्त्वोका ज्ञान होता है। इस प्रकारकी अपेक्षासे जिसको सम्यग्दर्शन प्राप्त हो उसको अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं। निसर्गज और अधिगमज-मेसे एकका भी अभाव नही है।

१६७—वार्तिक ९ में आचार्यदेव सिद्ध करते हैं कि सब भव्य जीवोको मोक्ष हो ऐसा नही है यह सिद्ध करनेके लिये कहा है कि **"अनन्तानन्त काल करि कितने ही भव्य जीव सिद्ध नहीं होंगे"** और ऐसा भी कहा है कि जिन जीवोका मोक्ष होगा उन सबको एक ही प्रकारकी कर्म निर्जराका (मोक्षका) नियम नही है, कितने ही भव्य सख्यात काल करि सिद्ध होंगे, कितने ही भव्य असख्यात काल करि सिद्ध होगे, कितने ही भव्य अनन्त काल करि सिद्ध होवेंगे, इसलिये मोक्ष जाननेवाले जो भव्य जीव हैं उनको सबको एक ही कालमे मोक्ष होगा ऐसा नियम नही है।

वार्तिकमे "अनियमात्" शब्द कहा है यह सब भव्य जीवोको लक्ष्यमे लेकर कहा है किन्तु भव्योमेसे जो जीव मोक्ष पानेवाला है उसके लिये नही है क्योकि भव्योमेसे जो जो जीव मुक्ति पावेगा उसका समय निश्चित है, अनिश्चित नही है इसलिए उसके लिये 'अनियमात्' शब्द है ही नही।

(कब्रमे गडे मरे हुए एक दिन जीवित हो जायेंगे और भगवान उस समय उन सबका न्याय करेगा। और जो जीव मोक्षके लायक होगा उसको मोक्ष देगा, और जो स्वर्गके लायक होगा उसे स्वर्ग देगा, और जो नरकादिकके लायक होगा उसको उसी प्रकारका फल देगा ऐसी मान्यता झूँठी है यहाँ ऐसा बताया है।)

१६८—कितने भव्य जीव सख्यात काल करि सिद्ध होयेंगे उसका

काल निश्चित नही है अर्थात् वे किस समय मोक्ष जावेंगे यह भगवानके केवलज्ञानमे नही आया है ऐसा कहनेका अभिप्राय आचार्यदेवका नही है कितने ही भव्य असंख्यात कालके बाद सिद्ध होंगे यह कहनेका अभिप्राय यह नही है कि जिस जिस भव्य जीवको असंख्यात कालके बाद सिद्धि होगी उसका मोक्षका समय निश्चित नही है और भगवान उस समयको नही जानते है ।

कितने ही भव्य अनन्तकाल करि सिद्ध होयेंगे, ऐसा कहा है, उसका अर्थ यह नही कि जो जो भव्य अनन्तकालके बाद सिद्ध होंगे उनका समय निश्चित नही है, और भगवान सर्वज्ञ उसको नही जानते ।

१६६—पीछे आचार्यदेव कहते है कि कितने ही भव्य ऐसे है जो अनन्तानन्त कालमे कभी भी सिद्ध नही होंगे । इसका अर्थ यह है कि अनन्तानन्त कालका सुनिश्चित ज्ञान भगवान सर्वज्ञको है और जो जो भव्य जीव मोक्ष जानेवाले है उन सबका समय भगवानके ज्ञान-मे आया ही है और उनके ज्ञानमे बाकीके जीवोका कभी भी मोक्ष नही होगा ऐसा भी आया है इस परसे यह सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञके ज्ञानमे सब जीवोकी अनादि अनन्त पर्याये आयी हैं और **भगवानके ज्ञानके वश सब जीवोंका और सभी द्रव्योका परिणमन ज्ञात होता है,** ऐसा आचार्य विद्यानन्दजीने 'श्री पात्रकेसरी स्तोत्र'मे छट्ठे श्लोकमे कहा है ।

१७०—इन सवका सार यह है कि, सब भव्योका काल करि मोक्ष होगा ही होगा ऐसा शकाकारने कहा है वह योग्य नही है, इसलिये ऐसा कहना कि जीवोकी कर्म निर्जरा तथा कर्म मुक्तिका कोई निश्चित समय नही है अर्थात् सिद्धि प्राप्त करनेवाले जीवोकी कर्म निर्जरा तथा कर्म मुक्तिका हरएकके लिए अपना अपना समय निश्चित नही है सो ऐसा मानना झूठ है ।

१७१—सब जीवोकी कर्म निर्जरा और कर्म मुक्ति होगी ऐसी बात सत्य नही है क्योकि अभव्योकी और कितने ही भव्य जीवोकी भी सिद्धि नही होगी तब जीवोकी कर्म निर्जरा और कर्म मुक्तिका निश्चित समय किस प्रकारसे हो सकता है ? कभी भी नही हो सकता। किन्तु इसका अर्थ ऐसा नही है कि जो भव्य जीव मोक्ष जायेगा उसके कर्मकी निर्जरा, कर्मकी मुक्तिका समय निश्चित नही है। ऐसा मानना यह वस्तुस्वरूपसे, केवलज्ञानके स्वरूपसे, आगमसे, और न्यायसे विरुद्ध है।

(क्रमशः)

सैद्धान्तिक चर्चा

लेख नंबर ४ गतांक से चालू

(अकालमृत्यु जो उदीरणामरण अर्थात् सोपक्रम आयुका अन्त अपने स्वकालमें ही होता है, अपने निश्चित कालसे आगे पीछे नहीं होता, काललब्धि, पुरुषार्थ आदि पंच समवाय, ज्ञेय-ज्ञानका स्वरूप, नियत अनियतके अर्थ, जैनाचार्योंकी प्रमाणिकता-अविरुद्धता आदि विषयमें— हमारे माननीय-आदरणीय श्री रामजी भाईने अति स्पष्टरूपमें वर्णन लिख दिया है, जिनमें अपूर्व तत्त्वज्ञानकी जिज्ञासा होगी वे मध्यस्थता और धैर्यसे इस लेखमालाको पढकर सच्चे समाधानको प्राप्त करेंगे ।)

[सम्पादक]

१७२—दूसरी भूल

(१) शिष्यने वार्तिक नम्बर ७की टीकामे भव्यके काललब्धिका आधार दिया है किन्तु शिष्य काललब्धिका सच्चा आशय नही जानता, वह बतानेके लिये आचार्य ८ वें वार्तिकमे कहते हैं कि काललब्धि है वह कोई मोक्षका उपाय नही है, मोक्षका उपाय तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकता ही है । आत्मज्ञान विना, और अनन्तानुबन्धी कषायके अभाव हुए बिना अकेला सम्यग्दर्शन किसी जीवको होता नही ।

(२) अधिगमज सम्यग्दर्शन अकेला अर्थात् ज्ञान-चारित्र रहित हो ऐसा नही है, उस बातका शिष्यको यथार्थ ज्ञान न होनेसे आचार्यने अधिगम सम्यग्दर्शनका स्वरूप समझाया है उसमे कहा है कि अधिगम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमे प्रथम उपदेशदाता विधि उपायज्ञ अर्थात् विधि पूर्वक उपायको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषके मिलापसे जीवादि पदार्थोंके स्वरूपको जाननेकी अपेक्षा बतलाई है । (अत देशना लब्धिमे निमित्त

मिथ्यादृष्टि नही होता ऐसा स्पष्ट नियम बताया है) और काललब्धि-को उपाय मानना भूल है।

विशेष खुलाशा

(३) वार्तिक ८-६ का अर्थ ऐसा है कि मोक्ष प्राप्त करनेवाले सब जीवोका काल निश्चित है और न जानेवालोको कभी मोक्ष नही होगा, यह बात भी निश्चित ही है। इसलिये सब भव्योका मोक्ष नही होनेसे सभी भव्योके निर्जराके कालके लिये अनियम है किन्तु उपरोक्त नियम है ही है (अर्थात् जो जो मोक्ष जायेगे उन्हीको निर्जरा और मोक्षका काल निश्चित ही है अनिश्चित—अव्यवस्थित नही है ऐसा अनेकान्त स्वरूप कहा। (भूलका वर्णन समाप्त)

१७३—वस्तु स्वरूपकी मर्यादा

(१) जो जो जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं उन सबका मोक्ष अर्थात् सर्व कर्म निर्जराका काल अनिश्चित है—अनियत है ऐसी मान्यता सर्वथा असत्य है।

(२) श्री जयसेनाचार्यकृत श्री प्रवचनसारकी टीका अ० २ गाथा ५२ पृष्ठ २०५-६ मे कहा है कि—

"अत्र अतीत अनन्तकाले ये केचन सिद्धसुखभाजनं जाता, भाविकाल आत्मोपादानसिद्ध स्वयमतिशयवदित्यादिविशेषण विशिष्ट सिद्ध सुखस्य भाजनम् भविष्यन्ति ते सर्वेऽपि काललब्धिवशेनैव।"

यहाँ काललब्धिके वशसे ही यह शब्द प्रत्येक पर्यायका क्रम-नियमित (स्वकाल) को ही सूचित करता है तथापि वहाँ भी "तत्र निज परमात्मोपादेयरुचिरूप वीतराग चारित्राविनाभूत यन्निश्चय सम्यक्त्व तस्यैव मुख्य, न च कालस्य, तेन स हेय इति।" काललब्धिका नियम होनेके साथ यहाँ कहते है कि-तथापि वहाँ भी निज परमात्मतत्त्वमे उपादेयरुचिरूप वीतराग चारित्रसे अविनाभूत जो निश्चय सम्यक्त्व उसकी ही मुख्यता है, कालकी नही, अत काल तो हेय है ऐसा जानना।

(३) स्वकाल अर्थात् काललब्धि तो जानने योग्य है, आश्रय करने योग्य नही है, हेय है ऐसा कहा है। कोई ऐसा माने कि स्वकाल और क्रमनियमित माननेमे तो पुरुपार्थ खतम होजाता है तो यह उसकी भ्रमणा है कारण कि काललब्धिको हेय मानकर निज परमात्मतत्त्वको उपादेय माननेसे तो मिथ्यापुरुपार्थ खतम होजाता है और सच्चा पुरुषार्थ प्रगट होता है।

(४) उसमें ५ समवाय १ स्वभाव–"उपादान सिद्ध" २–पुरुपार्थ निश्चय सम्यक्त्व आदिका वल, ३–स्वकाल। ४–नियति "नियम"। ५ कर्म–आठ कर्मका अभाव (गर्भितरूपसे) आया।

(५) मूलभूत मार—सभी आचार्योका और ज्ञानियोका मत एक ही प्रकारका–ऊपर कहे अनुसार ही है।

(६) श्री जयसेनाचार्य एक प्रकार कहे और इससे विरुद्ध श्री अकलकदेव तत्त्वार्थ राजवार्तिकमे कहे ऐसा नही हो सकता।

(७) इसलिये श्री अकलकदेवका कथन 'कालानियमात'का अर्थ श्री जयसेनाचार्यसे विरुद्ध नही होना चाहिये, जो कोई इससे विपरीत अर्थ करे वह अपने आत्माकी और श्री अकलकदेवकी अवज्ञा करते हैं ऐसा समझना।

हेय उपादेय

(८) यहाँ निज परमात्मा उपादेय अर्थात् आश्रय करनेयोग्य और अन्य सव हेय है ऐसा श्री जयसेनाचार्य कहते हैं।

(९) निश्चय सम्यक्दर्शन मुख्य अर्थात् प्रधान–उत्कृष्ट–उपादेय है और काल गौण अर्थात् हेय कहा है। मुख्य और गौणके अर्थके लिये देखिये प्रवचनसार गाथा ५३ की जयसेयाचार्यकृत टीका।

काललब्धिके वशसे ही

(१०) 'वशसे' और 'ही' वे खास मुद्दे के शब्द हैं। काललब्धि वशसे यह शब्द वतलाता है कि सव द्रव्योंकी सव पर्यायें शुद्ध–अशुद्ध

अपने अपने स्वकालके वश हैं और वे आगे पीछे हो ही नहीं सकती। 'ही' शब्द यह बात दृढ़ करनेके लिये कहा है, उत्पादरूप पर्याय अक्रमसे कभी नहीं होती ऐसा अस्ति और नास्तिरूप अनेकान्त कहा है 'काललब्धि वशसे ही' यह कथन सम्यक् एकान्त बताता है। अर्थात् सब पर्यायें (सब द्रव्यकी) क्रमनियमित ही होती है आगे पीछे नहीं होती ऐसा वस्तुस्वरूप है।

१७४—पद्मपुराण (भारतीय ज्ञान पीठ द्वारा प्रकाशित) २९ वां पर्व श्लोक ८३

श्लोक

(१) यत् प्राप्तव्य यदा येन यत्र यावतोऽपिवा।
तत् प्राप्यते तदा तेन तत्र तावतो ध्रुवम् ॥८३॥

अर्थ—सो ठीक ही है क्योंकि जिस कारण जहां जिससे और जो जितना कार्य होना होता है, उस समय वहां उससे और उतना ही कार्य प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है ॥८३॥

नोट—मूल गाथामें (१) ध्रुव शब्द है, यह निश्चितता, नियमितता, निश्चलता, असंशयता, अनपवादता बताता है।

(२) यदा—तदा, कालकी। (३) यत्र तत्र, क्षेत्रकी। (४) यावत्—तावत्, कार्यकी। (५) येन—तेन, जीवकी। (६) यत्—तत्, जो वह। (७) प्राप्तव्य—प्राप्यते, प्राप्त होने योग्य प्राप्त करनेकी (८) अपि—सर्वकी ध्रुवता—अत्यन्त निश्चलता बताता है। उसमें योग्यता स्वकाल—क्रमनियमितता आ गई।

(२) पद्म० पु० ११० वां पर्व श्लोक ४०

प्रागेवयदवाप्तव्य येन यत्र यथा यत
तत्परिप्राप्यतेऽवश्य तेन तत्र तथा तत ॥४०॥

अर्थ—जिसे जहां जिसप्रकार जिस कारणसे जो वस्तु पहिले ही प्राप्त करने योग्य होती है, उसे वहां उसीप्रकार उसी कारणसे वही वस्तु प्राप्त होती है ॥४०॥ पृष्ठ ३८४॥ (दे० पृ० २६)

नोट—(१) 'जहाँ'—क्षेत्र बताता है। (२) 'जिसप्रकार'-परिणाममें या प्रकार बताते है। (३) 'जिस कारण'से-कारण (-उपादान और निमित्त दो कारण) को बताते है। (४) 'प्राप्य करने योग्य वस्तु योग्यता बताते हैं। (५) जिस जीवको ये पांचो बातें अवश्य—निश्चितता बताती हैं—हरेक पर्यायमे निश्चितता है अनिश्चितता है ही नही ऐसा नि संदेहता दर्शक अनेकान्त समस्त लोकमे सदा प्रवर्तता है—

(३) इन दो गाथाओमे कही हुई बाते निश्चित है—अलघ्य है अनिवार्य है इन बातोका निर्णय करके श्री प्रवचनसारकी गाथा १९० से १९३ मे कहे अनुसार—

(१) व्यवहारनयसे उपजनित मोहको छोडना।

(२) व्यवहारनयमे अविरोधरूपसे मध्यस्थ रहना।

(३) शुद्ध द्रव्यके निरूपण स्वरूप निश्चयनय द्वारा मोहको दूर करना।

(४) मैं परका नही हूँ, पर मेरा नही है ऐसा स्व—परका परस्पर स्व—स्वामि सम्बन्धको त्याग देना।

(५) मैं एक शुद्ध ज्ञान ही हूँ ऐसा निर्णय करके अनात्माको छोड देना।

(६) आत्माको ही आत्मारूपसे ग्रहण करके परद्रव्यसे व्यावृत होना (निमित्त परद्रव्य है इससे व्यावृत होना)

(७) आत्मारूपी एक अग्रमे ही आत्माको रोकेना।

(८) ध्रुवत्वके लिये शुद्धात्मा ही उपलब्ध करने योग्य है। ऐसे सर्वज्ञके उपदेशको ग्रहण करना।

(९) अध्रुव ऐसे शरीरादिको (निमित्तको) जो उपलब्ध होनेपर भी उपलब्ध नही करना।

(१०) ध्रुव ऐसे शुद्धात्माको ही उपलब्ध करना ऐसा आचार्य श्री का आशय जानना।

१७५—हरेक द्रव्यकी सब पर्याय-कर्म निर्जरा-मोक्ष और अकाल-मरण भी निश्चित स्वकालमें ही होता है आगे पीछे नहीं।

[पद्मनन्दि पचविंशतिका अनित्य पचाशत गाथा ७–९–१०–१८]

उदेति पाताय रविर्यथा तथा शरीरमेतन्ननु सर्व देहिनाम्।
स्वकालमासाद्य निजेऽपि संस्थिते करोति क शोकमत· प्रबुद्धधी ॥७॥

अर्थ—जिसप्रकार सूर्य अस्त होनेके लिए उदय होता है उसीप्रकार यह शरीर भी, निश्चयसे नाश होनेके लिए ही उत्पन्न होता है। इसलिए **स्वकालके अनुसार** अपने प्रिय पुत्र आदिके मरने पर भी हिताहितके जाननेवाले मनुष्य कदापि शोक नही करते ॥७॥

दुर्लङ्घ्याद्भवितव्यता व्यतिकरान्नष्टे प्रिये मानुषे
यच्छोक क्रियते तदत्र तमसि प्रारभ्यते नर्तनम्।
सर्व नश्वर मेव वस्तु भुवने मत्वा महत्या धिया
निर्धूताखिल दु·ख सन्ततिरहो धर्म सदा सेव्यताम् ॥९॥

अर्थः—**दुर्निवार भवितव्यतासे** किसी प्रिय मनुष्यका मरण हो जाने पर, जो वहाँ शोक किया जाता है वह अंधेरेमे नृत्य आरम्भ करनेके समान है। ससारमे सभी वस्तुएँ नष्ट होनेवाली हैं ऐसा उत्तम बुद्धिके द्वारा जानकर समस्त दु·खोके नष्ट करनेवाले धर्मका सदा आराधन करो ॥९॥

[सस्कृत टीका पृष्ठ ९५ "**दुर्निवार भवितव्यता स्वरूपात**"]

१० वाँ श्लोक

पूर्वोपार्जित कर्मणा **विलिखितं यस्यावसानं यदा**
तज्जायेत तदैव तस्य भविनो ज्ञात्वा तदेतद् **ध्रुवम्** ॥
शोक मुञ्च मृते प्रियेऽपि सुखद धर्मं कुरुष्वादरात्
सर्पे दूरमुपागते किमिति भोस्तद् धृष्टि राहन्यते ॥१०॥

अर्थः—पूर्व भवमे सचित कर्मके द्वारा **जिस प्राणीका अन्त**

जिसकालमें लिख दिया गया है उस प्राणीका अन्त उसी कालमें होता है। ऐसा भलीभाँति निश्चय करके हे भव्य जीवों, तुम अपने प्रिय भी स्त्री पुत्र आदिके मरने पर शोक छोड दो तथा बडे आदरसे धर्मका आराधन करो, क्योंकि सर्पके दूर चले जाने पर उसकी रेखाको पीटना व्यर्थ है।

१८ वाँ श्लोक

यैव स्वकर्म कृत कालकलात्र जन्तु
तत्रैव याति मरणं न पुरो न पश्चात्।
मूढास्तथापि हि मृते स्व जने विधाय
शोक परं प्रचुर दु:खभुजो भवन्ति ॥१८॥

अर्थ—पूर्वोपार्जित अपने कर्मोंके द्वारा जो मरणका समय निश्चित हो गया है उसीके अनुसार प्राणी मरता है आगे पीछे नहीं मरता। ऐसा जानकर भी आत्मीय मनुष्यके मरने पर अज्ञानी जन तो भी शोक करते हैं तथा नाना प्रकारके दु:खोंको भोगते हैं ॥१८॥

नोट —(१) इस अधिकारमें मनुष्यायु सम्बन्धी कथन है वह सोपक्रम और निरुपक्रम दोनों प्रकारकी आयुको लागू पडता है।

(२) गाथा ७ में कहा है कि—सब प्रकारका मरण (सोपक्रम हो या निरुपक्रम हो) वह अपने स्वकालमें ही होता है आगे पीछे नहीं होता ऐसा उसमें गर्भित रखा है।

(३) गाथा ९ में कहा है कि जिनका जिसप्रकार मरण हो वह 'दुर्लंघ्य भवितव्यता' के स्वरूपसे होता है इसलिए स्वकाल, भवितव्यता आगे पीछे नहीं होती यह सिद्ध होता है।

(४) गाथा १० में कहा है कि 'विनिश्चित' शब्द जरूरी है उसमें कहा है कि "जिस प्राणीका अन्त जिस कालमें लिख दिया गया है—ज्ञानमें ज्ञात है उस प्राणीकी आयुका अन्त उसी कालमें होता है" अन्य प्रकारसे और अन्य कालमें होता ही नहीं है ऐसा ध्रुव शब्द बताते हैं।

(५) अवमान काल सब जीवोंके लिए निश्चित है अनिश्चित नहीं है।

(६) गाथा १८ मे स्पष्ट किया है कि मरण समय निश्चित है, अर्थात् सोपक्रम भी निश्चित है। वह आयुष्य नियमसे उदीरणारूप होगी ही होगी।

(७) "मरणे न पुरो न पश्चात्" शब्द बड़ा स्पष्ट है कि मरण आगे या पीछे नही होता है।

(८) इसलिए सिद्ध होता है कि सब प्रकारका मरण अपने स्वकालमे ही होता है, पूर्व या पश्चात् नही होता है। मात्र आयुका सोपक्रमपना अर्थात् अन्तिम भागमे उसका उदीरणारूप परिणमन हुआ है ऐसा ज्ञान करानेके लिए इसमे (शास्त्रोमे) व्यवहारनयसे अकाल मरण कहनेमे आता है।

(९) तलवार, बन्दूक, आदि सात कारण जो निमित्तमात्र हैं उससे आयुमे फेरफार होगया ऐसा माननेवाला क्रियावादी है और अर्हन्तके मतसे बाहिर है ऐसा भगवानका उपदेश है।

(१०) सोलापुरसे प्रकाशित पद्मनन्दि-पंचविंशतिके प्रस्तावना पृष्ठ ४३ मे लिखा है कि "आयुकर्मके अनुसार जिसका जिस समय प्राणान्त होना है वह उसी समय होगा। इसके लिए भ्रम न करके शोक करना तो ऐसा है जैसे सर्पके चले जाने पर उसकी लकीरको पीटते रहना, (१०)"

(११) इसी शास्त्रके पृ० ९८ मे लिखा है कि "इस ससारमे अपने कर्मके द्वारा जो मरणका समय नियमित किया गया है उसी समयमें ही प्राणी मरणको प्राप्त होता है वह उससे न तो पहिले मरता है और न पीछे भी"।

(१२) इसी शास्त्रके १०२ पृष्ठमे लिखा है कि "अभिप्राय यह है कि जब सभी ससारी प्राणी समयानुसार मृत्युको प्राप्त होनेवाले हैं, तब एकको दूसरेके मरने पर शोक करना उचित नही है ॥२९॥"

(१३) इसी शास्त्रके पृ० १०९ मे गाथा ५१ मे कहा है कि—

"कालेन प्रलय व्रजन्ति नियत तेऽपीन्द्रचन्द्रादय ॥

अर्थः—जिस कालमे प्रलय होनेवाला है वह नियत है इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी प्रकारका मरण हो वह अपने ही कालमे होता है यह बात नियत है ।

(१४) इसी शास्त्रके पृ० ११० मे गाथा ५३ मे लिखा है कि–

"कुर्यात्सा भवितव्यता गतवती तत्तत्र यद्रोचते ।"

अर्थ—आई हुई भवितव्यता वही करती है जो कि उसको (भवितव्यताको) रुचता है । इससे सिद्ध हुवा कि किसी भी द्रव्यकी कोई भी पर्याय अपने स्वकालमे ही होती है, किन्तु कोई पर्याय योग्य कालमे और कोई पर्याय अयोग्यकालमे होती है ऐसा मानना वह मिथ्या अनेकान्त है । सच्चा अनेकान्त ऐसा है कि सब द्रव्यकी प्रत्येक पर्याय योग्य कालमे ही होती है अन्य कालमे नही होती है ।

१७६ एक ही पर्यायको एक ही समयमे भिन्न भिन्न अपेक्षासे योग्यकाल और अयोग्यकाल लागू पाडना वही सम्यक् अनेकान्त है अर्थात् प्रत्येक पर्याय अपना द्रव्य क्षेत्र-कालभावमे योग्यकालमे ही होती है और परद्रव्य–क्षेत्र–काल और परभावमे योग्यकालमे नही है अर्थात् उसके लिये वह अयोग्य काल है ऐसा अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्त नियम सब द्रव्यकी सब पर्यायोमे लागू पडते हैं ।

१७७. कोई भी उत्पादरूप पर्याय योग्यकालमे और कोई पर्याय अयोग्यकालमे होती है ऐसा मानना आगम विरुद्ध है, और वह वर्तमान कालकी नई खोज है ।

प्रत्येक पर्याय क्रमिक (क्रमनियमित) ही होती है

१७८ आधार—धवल पु० १ पृ० ३८६ "एक द्रव्यमे अतीत अनागत और गाथामे आये हुए 'अपि" शब्दसे वर्तमान पर्यायरूप जितनी पर्यायरूप जितनी अर्थ पर्याय और व्यजन पर्याय है तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है" ॥१९९॥

ऐसा होने पर भी कोई अपनी बुद्धिसे उत्पादरूप पर्यायको सत्यरूपसे अक्रमिक माने तो वह व्यवहारमे विमोहित हृदयवाला है ऐसा भगवानने कहा है।

१८० प्रश्न —जिस भव्य जीवकी सिद्धि होनेवाली ही है उसका समय निश्चित है ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यने किस आगममे कहा है ?

उत्तर —मोक्षपाहुड गाथा २४ मे उन्होने लिखा है कि

"अति शोभन योगेन शुद्ध हेम भवति यथा तथा च।
कालादि लब्ध्या आत्मा परमात्मा भवति ॥२४॥"

अर्थ —"जैसे सुवर्ण पाषाण है सो सोधनेकी सामग्रीके सम्बन्ध करि शुद्ध सुवर्ण होय है **तैसे काल आदि लब्धि जो द्रव्य, क्षेत्र काल, भावरूप** सामग्रीकी प्राप्ति ताकरि **यहु आत्मा कर्मके संयोग करि अशुद्ध है सो ही परमात्मा होय है ॥२४॥"**

संस्कृत टीका पृ० ३२० पर निम्न प्रकार लिखा है।

"कालादि लब्ध्या कृत्वा कालादि लब्ध्या मत्या वा"

× × × × × **तथायं आत्मा कालादि लब्धि प्राप्य सिद्ध परमेष्ठी भवतीति**—भावार्थ।"

१८१ भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यकी यह गाथा बहुत स्पष्ट है क्योंकि मोक्षका काल निश्चित है ऐसा बतानेके लिये हेम (स्वर्ण) का उदाहरण देनेमे आया है उसका आशय यह है कि जब स्वर्ण अपनी योग्यतासे शुद्ध होनेके लायक होगा तब वह स्वय शुद्ध होगा उससमय उसको स्वय बाह्य उचित निमितका सम्बन्ध होगा ही। इस दृष्टांतसे यह सिद्धान्त निकलता है कि जिस २ भव्य जीवकी मोक्ष प्राप्तिका समय आया है उसको नियमसे मोक्ष होगा और उचित द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका सयोग होगा ही होगा।

१८२ इस परसे यह सिद्ध हुआ कि हरेक शुद्ध,–अशुद्ध द्रव्यकी

प्रत्येक शुद्ध-अशुद्ध पर्याय अपने २ स्वकालमे ही होगी। जैसे दृष्टातं स्वर्ण लिया है वह स्वर्णकी अशुद्ध दशा है और वह शुद्ध होता है इसी प्रकार आत्मा भी जिसकी पर्याय अशुद्ध है वह भी अपने स्वकाल परमात्मा होता है ऐसा दृष्टात और सिद्धात दोनोमे पूर्वकी पर्या अशुद्ध है और उसका व्यय होकर शुद्ध पर्याय हुई ऐसा बताया है।

१८३ प्रश्न —सब द्रव्योको अपनी (शुद्ध और अशुद्ध) पर्यायक उत्पाद और व्ययके लिये कालादि लब्धि है क्या ? हो तो इसके लिये किसी आगमका आधार है ?

उत्तर —हाँ, है, इस सम्बन्धमे कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा २१९ मे कहा है कि—

कालाइलद्धिजुत्ता णाणा सत्तीहि सजुदा जत्था।
परिणममाणा हि सय ण सक्कदे को वि वारेदु ॥२१९॥

सर्व पदार्थ कालादि लब्धि सहित, अनेक प्रकारकी शक्ति सहित हैं और स्वयं परिणमन करते हैं; उन्हें इसप्रकार परिणमन करते हुए रोकनेमें कोई समर्थ नहीं है।

१८४ श्री वृहद् द्रव्य सग्रह गाथा २१ की टीका पृ० ५५ मे लिखा है कि, "यहाँ तात्पर्य यह है कि यद्यपि **यह जीव काललब्धिके वशसे अनन्त सुखका भाजन (पात्र) होता है** तथापि विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभावका धारक जो निज परमात्माका स्वरूप है उसके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरण और सम्पूर्ण बाह्य द्रव्योकी इच्छाको दूर करनेरूप लक्षणका धारक तपश्चरणरूप ऐसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा तपरूप जो निश्चयसे चार प्रकारकी आराधना है वह आराधना ही उस जीवके अनन्त सुखकी प्राप्तिमे **उपादान कारण है ऐसा जानना चाहिए और काल उपादान कारण नहीं है इसलिये वह काल हेय (त्याज्य) है।" [देखिये आधार पेरा नं० १७३]**

इससे तीन बातें सिद्ध होती हैं।

(१) जीवका मोक्ष होता है उसके क्रम निर्जरा और मोक्ष अपनी स्वकाल लब्धिके वश (स्वकालसे) होता है।

१८५ प्रश्न—अशुद्ध जीवों और अशुद्ध पुद्गलोंकी पर्यायें अनिश्चित् हैं, कितनी अनतयसे होती हैं ऐसा माननेमें क्या दोष आता है ?

उत्तर—ऐसा माननेमें देशावधि, परमावधि, सर्वावधि, ऋजु-मति-विपुलमति मन पर्ययज्ञानी, निमित्तज्ञानी, (श्रुतज्ञानी) और केवलज्ञानी भविष्यकी अविद्यमान पर्यायोंको तात्कालिक (-वर्तमान) पर्यायकी तरह विशिष्टतापूर्वक नही जानते हैं ऐसी मान्यता हुई, यह मान्यता मिथ्या है। और ज्ञेयोंके स्वरूपसे भी विरुद्ध है।

१८६ जगतमें अनन्तानन्त जीव निगोदिया हैं, व्यवहार राशिके जीवोंमें भी बडी संख्या अज्ञानियोंकी है, और ज्ञानियोंमें भी चौथे गुणस्थानसे १४ वे गुणस्थान तकके जीवोंकी कितनी ही पर्यायें अशुद्ध हैं। इसलिए सब संसारी जीवोंकी भविष्यकी विकारी पर्यायोंका कोई वर्तमानमें ज्ञाता नहीं रहेगा। अशुद्ध जीवो और अशुद्ध पुद्गलोंके भविष्यकी हर एक पर्यायके उत्पाद–व्ययका वर्तमानमें कोई ज्ञाता नही रहेगा। उसका फल यह होगा कि सब जीव अल्पज्ञ व छद्मस्थ ही रहेंगे। ऐसा मानना भयंकर दोष है, किसी जीवको सर्वज्ञ माननेमें न आवे तो उसका प्रतिपक्षी भावरूप अल्पज्ञपना भी सिद्ध नहीं होगा, जीव और अजीव सबका अभाव हो जायेगा, जगत शून्य हो जायेगा। ज्ञेय और ज्ञान व्यवस्थित है—और परस्पर निमित्त है इस सिद्धान्तका नाश हो जायगा।

ज्ञानका स्वरूप

१८७ सर्वज्ञ भगवान भविष्यकी पर्यायोंको भी तात्कालिक पर्यायो की तरह उसके सर्वस्व स्वरूपको जानते हैं ऐसा प्रवचनसारकी नीचे दी हुई गाथाओंसे स्पष्ट होता है। [देखो पैरा १८९ का उत्तर]

१८८ प्रश्न.—अशुद्ध जीवों और अशुद्ध पुद्गलोंकी भविष्यकी पर्यायें अनिश्चित् हैं, और कितनी ही 'अनतयसे' होती हैं, इसलिए

सर्वज्ञके ज्ञानमे वह पर्याय जब उत्पादरूप होती है तब जानते हैं, इससे पहिले तो कोई पर्याय होगी, मात्र इतना ही जानते हैं, उसका पूर्ण स्वरूप नही जानते, क्या ऐसा मानना ठीक है ?

उत्तर:—श्री प्रवचनसारमे गाथा ३७, ३८, ३९, ४१, ४७, ५१ मे यह सिद्ध किया है कि वे सब बातें झूठ हैं।

१८९ [१] श्री प्रवचनसार गाथा ३७ मे कहा है कि असद्भुत पर्यायोको तात्कालिक पर्यायकी तरह विशेषपूर्वक केवलज्ञानी जानते हैं।

[२] गाथा ३८ मे कहा है कि जो पर्याय अनुत्पन्न है वह पर्याय भी केवलज्ञानमे प्रत्यक्ष है।

[३] गाथा ३९ मे कहा है कि अनुत्पन्न पर्याय तथा नष्ट पर्यायको केवलज्ञान प्रत्यक्षरूपसे न जाने तो उस ज्ञानको दिव्य कौन कहेगा ?

[४] गाथा ४१ मे कहा है कि अनुत्पन्न और नष्ट पर्यायको जानता है वह ज्ञान अतीन्द्रिय है।

[५] गाथा ४७ मे कहा है कि जो एक ही साथ सर्वत तात्कालिक या अतात्कालिक, विचित्र और विषम समस्त पदार्थोको युगपत् जानता है उसे क्षायिक ज्ञान है।

[६] गाथा ५१ मे कहा है कि तीनो कालमे सदा विषम सर्व क्षेत्रके अनेक प्रकारके समस्त पदार्थोको जिनदेवका ज्ञान एक साथ जानता है। अहो ! ज्ञानका माहात्म्य ?

[७] गाथा ४८ मे लिखा है कि जो एक ही साथ तीन काल और तीन लोकके पदार्थोको नही जानता उसे पर्याय सहित एक द्रव्य भी जानना शक्य नही है।

[८] गाथा ४९ मे कहा है कि यदि अनन्त पर्यायवाले एक द्रव्यको तथा अनन्त द्रव्यसमूहको एक ही साथ नही जानता तो वह सब अनन्त द्रव्य समूहको कैसे जान सकेगा अर्थात् जो आत्मद्रव्यको नही जानता वह समस्त द्रव्य समूहको नही जान सकता।

अनियत गुणपर्यायवाला हो वह परसमय है वहाँ '**अनियत**' का क्या अर्थ है ? (२) 'अनियतपना' किसको कहते है ?

उत्तर —गाथा १५५ मे काल अपेक्षा '**अनियत**' नही कहा किन्तु भाव अपेक्षासे नीचेके शब्दोमे कहा है "ससारी जीव, (द्रव्य अपेक्षासे) ज्ञानदर्शनमे **अवस्थित** होनेके कारण स्वभावसे नियत (—**निश्चलरूपसे स्थित**) होने पर भी, जब अनादि मोहनीयके उदयका अनुसरण करके परिणति करनेके कारण उपरक्त उपयोगवाला (—अशुद्धोपयोगवाला) होता है तब (स्वय) भावोका विश्वरूपपना (अनेकरूपपना) ग्रहण किया होनेके कारण उसे जो अनियतगुणपर्यायपना होता है वह **परसमय अर्थात् परचारित्र है;** वही जीव जब **अनादि मोहनीयके उदयका अनुसरण करनेवाली परिणतिको छोडकर** अत्यन्त शुद्ध उपयोगवाला होता है तब (स्वय) भावका एकरूपपना ग्रहण किया होनेके कारण उसे जो नियत गुर्ण पर्यायपना होता है वह स्वसमय अर्थात् स्वचारित्र है ।"

यहाँ अनियत गुणपर्यायका अर्थ रागवाला उपयोग है, यह विभावरूप, अशुद्ध पर्याय अपने शुद्ध स्वरूपसे विरुद्ध होनेके कारण वह अपने स्वरूपमे स्थिर (—स्थायी) नही है किन्तु अस्थिररूप, अनेकरूप, विविधप्रकाररूप, चलरूप है ऐसा उनका (—अनियतका) अर्थ है ।

परसमयरूप परिणमनेवाले जीवकी पर्याय स्वकालमे नही होती अक्रमिक (आगे पीछे) होती है ऐसा अर्थ इस गाथाका हो सकता नही । अर्थात् ऐसा अर्थ तत्त्वत गलत है ।

श्री जयसेनाचार्यने—'नियत' का अर्थ—निर्मल और 'अनियत' का अर्थ मलिन निम्न शब्दोमे कहा है—"प्रथम तो जीव शुद्धनयसे **विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव** है पश्चात् व्यवहारसे निर्मोह शुद्धात्मोपलब्धि-के प्रतिपक्षभूत अनादि मोहके उदयके **वश होकर** मतिज्ञानादि **विभाव-गुण और नर नारकादि विभावपर्यायरूप परिणत होकर परसमय रत होनेसे** परचरित होता है, निर्मल विवेकी स्वसमयरूप परिणमते हैं ।"

स्वसमय जीव अपने स्वरूपमे निश्चल रहनेके कारण 'नियत गुण पर्यायवाला' कहा है और जो जीव मोहवश स्वय परलक्षी होकर अस्थिर होता है, रागादिक औपाधिकभावरूप परिणमता है उसको अनियतगुण पर्यायवाला कहा है।

सक्षेपमे ऐसा समझना कि स्वचारित्र वह नियत गुण पर्याय है और परचारित्र वह अनियतगुणपर्याय है। अनियतका अर्थ "विभाव" अथवा औपाधिकभाव यहाँ कहा है।

समयसार गाथा २०३ की टीकामे भी नियत और अनियतका अर्थ इसप्रकार ही करनेमे आया है।

प्रवचनसार ४७ नयोके अधिकारमे नय नम्बर २६–२७ मे नियतनय और अनियतनयका वर्णन है वहाँ भी एक ही समयमे एक जीवमे नियतस्वभावको अपना शुद्धस्वभाव और अनियतको अपना अशुद्ध स्वभाव कहा है।

श्री समयसार गाथा १४ की टीकामे आत्माके वृद्धि हानिरूप पर्याय भेदोको 'अनियत' कहा है और चलाचल रहित एकरूप भावको 'नियत' कहा है। गाथा २०५मे कहा है कि—"यदि [तूं] कर्मोसे मुक्त होना चाहता हो तो "नियत" ऐसा इसको (ज्ञानको) ग्रहण कर, टीकामे कहा कि × × "नियत ही ऐसा यह एक पद प्राप्त करने योग्य है।"

अनियत' का अर्थ सब जगह इस ही प्रकार करनेमे आया है कारण कि विभाव–अशुद्धता तो एक प्रकार नही है, परपदार्थका आश्रय करनेसे विभावमे विश्वरूपता–अनेकता आती है निर्मल स्वभाव-रूप एकरूपता आती ही नहीं और वे सब विभावभाव हेय है ऐसा बतानेके लिये उसे 'अनियत' कहा है।

जीवमे असख्य प्रदेशोका ससारदशामे सकोच विस्ताररूप परिणमन तथा वृद्धि हानिरूप परिणमन है उसको भी अनियत-भाव कहा है।

(दे० राजमल्लजी कृत समयसार कलश टीका सूरतवाली पृ० २०)

सारांश

'अनियत' का अर्थ—कोई भी उत्पादरूप पर्याय अपने नियत स्वकालमे न होकर, आगे पीछे हो जाय, अक्रमिक भी हो जाये ऐसा अर्थ जैन सिद्धान्तमें नही है।

श्री देवसेनाचार्य कृत आलाप पद्धति प्रकाशक सकल दि० जैन पचान (नातेपुते) पृ० १०५ मे कहा है कि वस्तुका **नियमित आकार, नियमित क्षेत्र, नियमित काल और नियमित भावरूपसे** ज्ञान नही होनेको अप्रतिपत्ति दोष कहते हैं जैसे यह सीप है कि चाँदी,? यहाँ पर **नियमित** आकारादिरूपसे ज्ञान नही होनेके कारण वास्तवमे यह क्या वस्तु ह ऐसा नही समझा जा सकता है तथा जो वस्तु किसी-के ज्ञानका विषय ही नही होती वह वस्तु ही नही है, ऐसा समझा जाता है।"

विभाव भावरूप पर्याय जिसको शुद्धपर्याय अपेक्षासे अनियत कहनेमे आता है वह भी अपना '**नियमित भावरूप**' है उतना ही नही किन्तु वह अपने स्वकालमे होनेसे '**नियमित कालमें**' है, पर्याय कभी **स्वकालसे मिटकर आगे पीछे नहीं होती** ऐसा न माननेवालोको न्याय शास्त्रमे जो आठ दोष दिये हैं, उसमेसे '**अप्रतिपत्ति**' नामका वडा दोष आता है। सोलापुरसे प्रकाशित पद्मनन्दी पचविंशतिका अनित्य पचा-शत पृ० ५८, गाथा १८ मे कहा है कि—मरण जीवकी अशुद्ध पर्याय है वह भी पूरा–पश्चात् (आगे–पीछे) नही होती, और सब पर्याय नियमित ही होती है।

इस विषयमें विशेष प्रश्न

१९२ प्रश्न—**निमित्तोंके आलम्बनकी लालसावाला जिसका चित्त है ऐसे जीवोंको** आगममे कैसा कहा है ?

उत्तर—श्री समयसारजी कलश २५७ मे आचार्यदेवने ऐसे जीवोको पशु अर्थात् अज्ञानी कहा है। ज्ञेय है वह ज्ञानका निमित्त है

और अज्ञानी निमित्तका आश्रय करके अपने ज्ञानका सम्यक्त्वपनेका खून करता है उसके लिए यह कलश आया है।

१९३ इससे सिद्ध हुआ कि जो जीव वास्तवमे निमित्तसे लाभ मानता है उसको पर पदार्थके आलम्बनकी लालसा कभी भी नहीं छूटेगी और वह मिथ्यादृष्टि रहेगा।

१९४ प्रश्न—निमित्त जुटावे या नही ?

उत्तर—निमित्त पर द्रव्य है उसका मालिक वह स्वय है, जीव नही है वह पर निमित्तको कैसे जुटा सकता है ? अर्थात् किसी भी प्रकारसे नही जुटा सकता।

इस विपयमे श्री प्रवचनसारकी गाथा १६ की टीका, पृ० १९मे लिखा है कि, "यहाँ यह कहा गया है कि— निश्चयसे परके साथ आत्माका कारकताका सम्बन्ध नहीं है, कि जिससे शुद्धात्मस्वभावकी प्राप्तिके लिए सामग्री (बाह्य साधन) ढूंढनेकी व्यग्रतासे जीव (व्यर्थ ही) परतन्त्र होते हैं।"

१९५ विशेपमे यहाँ यह समझना चाहिए कि जहाँ २ काललब्धि-का प्ररूपण करनेमे आता हो वहाँ २ शेष सामग्रियोका कथन न करने-मे आया हो तो भी वे उसमे अन्तर्निहित हो जाती हैं, इसलिए काललब्धि माननेसे पुरुषार्थ उड जाता है ऐसा नही है क्योकि उस समयमे भी पुरुषार्थ-स्वभावादि पाँच समवाय एक साथ होते हैं।

(देखिये धवला भाग ६ पृ० २०४)

१९६ सोपक्रम आयुवाले जीवका किस समय मरण होगा यह अवधिज्ञानी आदि और सर्वज्ञके ज्ञानमे आया, आयुकर्मकी उदीरणा कब होगी यह भी अवधिज्ञानी आदि और सर्वज्ञके ज्ञानमे आया इस प्रकार अशुद्ध पर्यायोका ज्ञान भी आया, और सर्वज्ञके ज्ञानमे भविष्यमे सिद्ध होनेवाले जीवोकी कर्म निर्जराका समय, कर्म मुक्तिका समय, सिद्ध दशाका प्रथम समयादि सब जाननेमे आया। प्रश्नकार उसका

समय निश्चित नही है ऐसा प्रतिपादन करते हैं। आप देखिये—यह कितनी बडो विपरीतता है ? इसप्रकार सिद्ध हुआ कि तत्त्वार्थ-सूत्र अध्याय १ सूत्र ३ की टीकामे वार्तिक ७–८–९ सम्बन्धी जो अर्थ प्रश्नकार करना चाहता है वह विपरीत है ।

भूलका स्पष्टीकरण

१९७ प्रश्नमे वार्तिक ७–८–९ का जिसप्रकार अर्थ करना चाहते हैं उसप्रकार अर्थ करनेसे क्या क्या भूलें होती हैं यह बताते हैं ।

[१] ज्ञेयतत्त्वके स्वरूपमे वडी भारी भूल है, क्योकि उनका अभिप्राय प्रवचनसारकी गाथा ३६, ४१, ४८ तथा १४५ की टीकाओंसे विरुद्ध है ।

[२] ज्ञानतत्त्वमे भी वडी भूल है क्योकि वह देशावधि, परमावधि, सर्वावधि, ऋजुमति-विपुलमति मन·पर्ययज्ञानी, निमित्त-ज्ञानी (श्रुतज्ञानी) और केवलज्ञानीके स्वरूपसे विरुद्ध है ।

[३] जीव अजीव तत्त्वकी भूल—ज्ञान तत्त्व और ज्ञेयतत्त्व-की भूल होनेसे उसमे जीव, अजीव तत्त्वकी भूल आगई क्योकि अपना ज्ञान जीव तत्त्व है और ज्ञेय तत्त्मे परजीव और अचेतन सव द्रव्य आ जाते हैं ।

[४] आस्रव, वन्ध तत्त्वकी भूल—जिस जीवको जीव अजीवका स्वसवेदनपूर्वक सच्चा भेदज्ञान नही होता है वह रागसे एकत्वबुद्धिवाला होता है इसलिये उसको जीव और आस्रवका भेदज्ञान कभी नही होता, (देखिये, श्री समयसार गाथा ६९, ७०, ७२, ७४)

[५] पुण्य-पाप तत्त्व सवधी भूल—पुण्य-पापका श्रद्धान हो तो पुण्यको मोक्षमार्ग न माने या स्वच्छदी बनकर पापरूप न प्रवर्ते इस-लिये मोक्षमार्गमे ऐसा श्रद्धान भी आवश्यक जानकर इन दो तत्त्वोको मिलानेसे नव पदार्थ कहे। ऐसा स्वरूप अज्ञानी नही जानते हैं इसलिये उनकी पुण्य–पाप दोनो तत्त्वोके सम्बन्धमे भूल होती है ।

[६] संवर-निर्जरा तत्त्वकी भूल—श्री प्रवचनसार गाथा १५७ मे सम्यग्दृष्टिको व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान व व्यवहार चारित्रको शुभोपयोग कहा है, धर्मी जीवका शुभोपयोगका एक अंश भी संवर-निर्जरारूप नही है। (देखो श्री समयसार राजमलजी कृत कलश टीका पृ० १११-१२ मे स्पष्टरूपसे कहा है कि, 'सम्यग्दृष्टिका शुभोपयोग भी कभी भी संवर-निर्जराका कारण नही होता किन्तु अज्ञानी जीव शुभोपयोगमे आशिक संवर-निर्जरा मानते हैं यह संवर-निर्जरा तत्त्वकी भूल हुई।

[७] मोक्ष तत्त्वकी भूल—सिद्धकी पर्यायका अर्थात् कर्ममुक्तिका कोई निश्चित् काल नही है ऐसा प्रश्नकार लिखता है। प्रश्नकारके शब्द निम्नप्रकार हैं। "जीवोकी कर्मनिर्जरा तथा कर्ममुक्तिका कोई निश्चित् समय नही है," इसलिए मोक्षके स्वरूपसे, केवलज्ञानके स्वरूपसे, आठ कर्मोके क्षयके स्वकालके सम्बन्धमे, (पर्यायका अर्थमे, क्रमका अर्थमे, क्रमभावी, क्रमनियमित, क्रमअनुपाति, प्रतिनियाम, क्रमबद्ध, नियत, सम्यक् एकान्त, सम्यक् नियति, ऊर्ध्वप्रचय, ज्ञेयके स्वरूपका और ज्ञानके स्वरूपका—इन सम्बन्धी) विपरीत मान्यता करते हैं, इसलिए ऐसी विपरीत मान्यता होनेसे उसे मोक्षतत्त्वकी भूल होती है।

१९८. प्रश्न नं० १-२-३ का समग्र जवाब

(१) अकालमृत्यु सर्वज्ञके ज्ञानका विषय है। जब यह बात प्रश्नकारके प्रश्नमे स्वीकृत है तो सर्वज्ञके ज्ञानमे किसके किस समय अकाल मृत्यु (उदीरणा मरण) होगी ऐसा जाननेमे आता ही है, न जाने ऐसा नही बनता। निश्चयसे अकालमृत्यु स्वकालमे ही है—व्यवहारसे कर्मकी उदीरणाका ज्ञान करानेके लिये 'अकाल' कहा है किन्तु वह स्वकालमे नही होता है ऐसा नही है।

(२) अनादि अनंत कालके सब संसारी जीवोंके कर्मकी निर्जरा, उदीरणा, उदयादि सब सर्वज्ञके केवलज्ञानका विषय होनेसे करणानु-

योगके शास्त्रमे वह बतलाये गये हैं। तीनो कालवर्ती सब पर्यायें ज्ञेय होनेसे अपना स्वरूप सर्वस्वको अक्रमसे (युगपत्) ज्ञानको अर्पण करते हैं और ज्ञान अपनी अखडित प्रतापवान प्रभुत्व शक्तिसे अत्यन्त आक्रमण करके वह सभी पर्यायोको अपने ज्ञानमे प्रतिनियत करते और अनादि अनत कालकी छहो द्रव्यकी प्रत्येक पर्याय अपना समस्त स्वरूप अकम्पपनेसे ज्ञानको अर्पण करते हैं। इसलिये जिस जीवने अतीत अनतकालमे सिद्धि प्राप्त की उसकी तथा जो वर्तमानमे मुक्ति प्राप्त करते हैं और भावीमे सिद्धिको प्राप्त करेंगे उनकी ससार दशासे लेकर सिद्धदशा वहाँ तककी अर्थात् अज्ञानदशाकी कर्म निर्जरा और ज्ञानदशा बादकी कर्म निर्जरा केवलज्ञानमे प्रत्यक्ष भासती हैं। इसलिये श्री अकलकदेव कृत त राजवार्तिकमे जो अर्थ प्रश्नकर्त्ता समझा है वह गलत है।

(३) सभी आचार्य (—दि० जैनाचार्य) का कथन यथार्थ है किन्तु नय विभाग द्वारा उसका तात्पर्य समझनेकी आवश्यकता है।

(क्रमश)

है, ऐसा ज्ञेयका स्वरूप श्री प्रवचनसार गाथा ३७-३८ और ३९ मे कहा है। ज्ञेयकी ऐसी अद्‌भुत ज्ञेयत्वशक्ति जो नही मानते वे ज्ञेयके स्वरूपसे अज्ञात हैं। भविष्यकी जो पर्याय निमित्तकी अपेक्षासे नैमित्तिक है। वे नैमित्तिक पर्याय और उसका निमित्त दोनो अतीत हों, वर्तमान हो या अनागत हो वे सब अपना सर्वस्वरूप अकपपनेसे ज्ञानको न अर्पे और ज्ञानके प्रति तात्कालिककी माफिक 'नियत' न हो ऐसा माना जाय तो ज्ञेयका स्वरूप, जैसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यने कहा है ऐसा वे मानते ही नही।

२०१–प्रश्न—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल और सिद्ध-भगवानकी पर्यायको 'एकातरूप क्रमवद्ध' माने तो ऐसे जीवकी मान्यता सम्यक् है या मिथ्या ?

उत्तर—ऐसी मान्यता मिथ्या है, क्योकि, वह मिथ्याएकान्त हुआ। सम्यक्अनेकातमे वे पर्यायें स्वमे क्रमवद्ध हैं और वे परसे क्रमवद्ध नही हैं अर्थात् अक्रमवद्ध हैं ऐसा मानना चाहिये। उसको परसे अक्रमवद्ध कहनेसे कोई भी पर्याय अनिश्चित है, अनियत है और आगे पीछे होती है ऐसा नही समझना। छ द्रव्योकी प्रत्येक पर्याय (शुद्ध-अशुद्ध) अपने निश्चित–नियत स्वकालमे ही होती है, अन्य कालमे नही होती ऐसा सम्यक् अनेकान्त है। सम्यक्एकातसे छ द्रव्योकी सब पर्यायें (शुद्ध-अशुद्ध) क्रमवद्ध ही होती हैं। (अन्यथा नहीं होती)

२०२–प्रश्न—"अशुद्ध ससारी जीवोके तथा अशुद्ध पुद्‌गलोके उपादान (योग्यता) अशुद्ध है, विकृत है इसलिए उनका परिणमन अनियत, अनिश्चित रहा करता है," ऐसा कथन आगमोक्त है ?

उत्तर—(१) वह कोई आगम कथन नही है न्यायमे भी विलकुल असत्य है, कोई भी परिणमन अनियत, अनिश्चित हो तो वह 'ज्ञेय' नहीं है और जो ज्ञेय नहीं है वह जगतका पदार्थ भी नहीं है।

(२) शुद्धपर्याय हो या अशुद्धपर्याय हो, भूत हो वर्तमान हो

उत्तर—अनिश्चित ऐसा कोई द्रव्य, कोई गुण और कोई पर्यायके धर्म हैं ही नही । अथवा छद्मस्थके ज्ञानमे न आवे इसलिए अनिश्चित है ऐसा मानना ठीक नही है । कोई पदार्थ-गुण, पर्याय, उपादान, निमित्त-नैमित्तिक, अनिश्चित हो जावे ऐसा बनता नही । जिन छद्मस्थोको अवधि-ज्ञान हुवा है वे अपने विकासकी मर्यादाके अनुसार पुद्गलकी भविष्य पर्यायोको उसका उपादान और निमित्त कारणोको तथा जीवके भविष्यमे होनेवाले औपशमिक, क्षायोपशमिक और औदयिक भावोको बराबर जानते हैं उनके ज्ञानमे वह ज्ञेय अनिश्चित नही है । मन पर्यय ज्ञानमें भी भविष्यकी बात बराबर आती है । उसके ज्ञानमे सब ज्ञेय निश्चित ही है । केवलज्ञानीके ज्ञानमे भी कोई पदार्थ अनिश्चित नही है । श्रुतज्ञानीके ज्ञानके विषयमे भी उसेका ज्ञेय अनिश्चित हो ऐसा होता ही नही है । लेकिन अपने ज्ञानका विकास कम होनेसे जाननेमे नही आते इसलिये वे अपने ज्ञानके विकासकी वृद्धि करके केवलज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं । अज्ञानी उसको अनिश्चित माने वह उसके ज्ञानका दोष है । किसी भी वस्तुको उसके स्व द्रव्य, गुण और पर्यायसे अस्ति और पर से नास्ति मानना और फिर भी उसको 'अनिश्चित' विशेषण लगाना परस्पर विरुद्ध है, अनिश्चित विशेषण लगानेसे 'अनध्यवसाय' नामका और 'अप्रतिपत्ति' नामका दोष आता है ।

२०४—ज्ञेयका स्वरूप सम्यक्ज्ञान ही जान सकता है—ज्ञेयका स्वरूप ज्ञानके अलावा दूसरा और कौन जान सकता है ? उसका कथन दिव्यध्वनिके अलावा दूसरा कौन यथार्थपणे कर सकेगा ? जैनागम अनादिसे प्रवाहरूप चला आरहा है । दिव्यध्वनि भी अनादि प्रवाहसे चली आ रही है । आचार्यका कथन भी अनादि प्रवाहसे चला आ रहा है । श्रुतकेवली भी अनादि प्रवाहसे चले आरहे हैं । सौ इन्द्रों भी अनादि प्रवाहसे चले आरहे हैं देखिये पचास्तिकाय गाथा १ तथा श्री समयसार गाथा १ की टीका (जिसमे परमागमको अनादि

आवे उस समय तक वह अनिश्चितरूपसे ज्ञात होवे तो केवलज्ञान अनादिसे अनन्त काल तक सबको जानते हैं यह बात सिद्ध नही होगी। **क्योंकि केवलज्ञानी तो अनादिसे प्रवाहरूप चले आ रहे हैं।** अकालमृत्यु—कर्म निर्जरा, मोक्ष सबका काल निश्चित ही है।

(३) भूत, भावी और वर्तमान पर्यायोंका आकार :— 'आकार'का अर्थ 'स्वरूप' होता है। प्रत्येक स्कंधोकी और परमाणुकी पर्यायका क्या स्वरूप होगा वह भी उसी प्रकार परिपूर्णरूपसे ज्ञेय होनेमें जाननेमे आता है।

एक-एक द्रव्यमे अनन्तगुण हैं, प्रत्येक गुणकी समय-समयवर्ती पर्यायें होती हैं, एक गुणकी भूत-भावी और वर्तमान पर्यायें अनादि अनंत हैं तथा एक एक पर्यायमे शक्तिके अंश अनंत होते है उन सर्व ज्ञेयको **एक समयमें पृथक्-पृथक् जान लेना ही केवलज्ञानका कार्य है।** यह महिमा निर्मलज्ञानकी ही है। क्षायिक ज्ञान ही ऐसा शक्तिशाली ज्ञान है (देखिये श्री प्रवचनसार गाथा ३९, उसकी टीका सूरतसे प्रकाशित पृष्ठ १९५)

सब पर्यायोका स्वरूप भी जबसे केवलज्ञान है तबसे केवलज्ञानमे है, कर्मकी निर्जरा और मोक्ष (मोक्षमे जानेवाले जीवका) ज्ञेय होनेसे केवलज्ञानमे अनादिसे है। केवली भगवान अनादि प्रवाहमे चला आरहा है इससे सिद्ध हुआ कि समस्त ज्ञेय अनादि प्रवाहमें चला आरहा है, और अनंत कालतक चलेगा।

२०९—प्रश्न—'संकर-व्यतिकर' दोषका क्या अर्थ होता है ?

(१) संकर-व्यतिकर दोषकी व्याख्या श्री देवसेनाचार्य आलापपद्धतिमेंसे पढ लेवें।

(२) संक्षेपमे इसका इतना ही अर्थ होता है कि एक पर्यायका दूसरी पर्यायके साथ ज्ञेयरूपसे संकरता (एकता) नही होती यदि संकरता हो जावे तो संकर दोष लागू पडता है।

अर्पित करे (एक ही साथ ज्ञानमे ज्ञात हो) इसप्रकार उन्हे अपने प्रति नियत न करे (अपनेमे **निश्चित न करे**, प्रत्यक्ष न जाने), तो उस **ज्ञानकी दिव्यता** क्या है ? इससे (यह कहा जाता है कि) पराकाष्ठाको प्राप्त ज्ञानके लिए यह सब योग्य है ।"

(२) इसमे 'अक्रम' शब्द बडा उपयोगी है, भविष्यकी पर्याय जबतक प्रगट न होवे तबतक अनिश्चित रहे और प्रगट होवे तब ज्ञानमे ज्ञात हो तो क्रम हुआ, अक्रम नही हुआ । केवलज्ञान अपने प्रति ज्ञेयको नियत न करे ऐसा बनता नही है ।

(३) इस गाथामे ज्ञेयके स्वरूपकी अद्‌भुत शक्ति और ज्ञानकी अद्‌भुत शक्ति बतलाई है, साथ ही ज्ञानकी पराकाष्ठा क्या हो सकती है वह भी बतलाई है, ज्ञेयमे वर्तमान पर्याय प्रगट न हो तबतक वह ज्ञानके प्रति अनिश्चित रहे, तो ज्ञानकी अपनी अखण्डित प्रताप-युक्त अद्‌भुत शक्ति किसप्रकार कही जावे ? ज्ञानकी पराकाष्ठा किस-प्रकार कह सके ? इतना ही नही **ज्ञेय स्वरूपकी ज्ञेयत्वकी अद्‌भुत शक्ति कहाँ रही ?** अर्थात् प्रमेयत्व गुणकी अद्‌भुत शक्ति नही रही ?

(४) श्री प्रवचनसारकी गाथा ३८ और ३९ दोनोकी टीकाओमे भविष्यका ज्ञेय नियत अर्थात् निश्चित है, स्थिर है ऐसा स्पष्टरूपसे बताया है, इसलिये कोई भी भविष्यकी विकारी पर्याय-को अनिश्चित मानना वह गम्भीर भूल है और भगवानके ज्ञानमे प्रत्यक्ष स्पष्ट नही आया ऐसा गाथा ३९की टीकापरसे सिद्ध होगा। भविष्यकी विकारी पर्यायें प्रत्यक्ष नही जाननेमे आवे ऐसा मानना निज सर्वज्ञ शक्तिका भी अनादर है ।

२०९—प्रश्न—श्री प्रवचनसारकी गाथा २०० **ज्ञेयाधिकारकी टीकामे** कहा है कि "**ज्ञेय ज्ञायक** लक्षण सम्बन्धकी अनिवार्यताके कारण ज्ञेय-ज्ञायकको **भिन्न करना अशक्य होनेसे** विश्वरूपताको प्राप्त होता हुआ भी जो (शुद्धात्मा) सहज अनन्त शक्तिवाले ज्ञायक स्वभाव-के द्वारा एकरूपताको नही छोडता" इसका क्या अर्थ है ?

करना अशक्य है) यदि ऐसा न हो तो (यदि आत्मा सबको न जानता हो तो) ज्ञानके परिपूर्ण आत्म-सचेतनका अभाव होनेसे परिपूर्ण एक आत्माका भी ज्ञान सिद्ध न हो" ।

इसमे भी सस्कृतमे 'अत्यन्त अशक्य—विवेचनात्वात्' ऐसा शब्द प्रयोग किया है ।

यहाँ भी ज्ञेय और ज्ञानका, ज्ञान और ज्ञेयका परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध किया है ।

२११–प्रश्न –'अत्यन्त अशक्य विवेचन' कहनेका क्या आशय है ?

उत्तर–ज्ञान, ज्ञेयमे कुछ भी हस्तक्षेप नही करता, फिर भी ज्ञानमे जिस प्रकारकी पर्याय जाननेमे आई वैसी ही भविष्यमे पर्याय होगी । ज्ञान और ज्ञेयके बीचका अनादि अनन्त परस्पर निमित्त–नैमित्तिक, उपादान–निमित्तका सम्बन्ध बताते है, ऐसा माननेमे न आवे तो बडा विप्लव होजावे क्योकि ज्ञान एक प्रकारका हुआ, ज्ञेय दूसरे प्रकारसे भविष्यमे परिणमे और भविष्यमे एक प्रकारसे परिणमन हुआ और पूर्वमे उसे दूसरे प्रकारसे जाननेमे आया ऐसा कभी भी बनता नही है ।

ज्ञानके ज्ञेयभूत द्रव्य आलम्बन अर्थात् निमित्त है, यदि ज्ञान ज्ञेय को न जाने तो ज्ञानका ज्ञानत्व क्या रहा ? ज्ञेयका ज्ञान आलम्बन अर्थात् निमित्त है । यदि ज्ञेय ज्ञानमे ज्ञात न हो तो ज्ञेयका ज्ञेयत्व क्या हुआ ? (देखिये श्री प्रवचनसार गाथा ३७ पृ० ४६ फुटनोट)

ज्ञानका स्वरूप

२१२–प्रश्न –श्री समयसारकी गाथा १४३मे केवलज्ञानका स्वरूप, विश्वका साक्षीपना, निरन्तर प्रकाशमान, सहज, विमल, सकल, केवलज्ञानके द्वारा केवली भगवान सदा स्वय ही विज्ञानघन हुआ है, उसमे एक–एक शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर –"भविष्यकी जो विकारी पर्याय (प्रगट होनेके पूर्व) अनिश्चित है इसलिये ज्ञानमे अनिश्चित रूपसे ज्ञात है और पीछे वर्तमानमे

परिपूर्णरूपसे आजाती है।" ऐसा माननेमें इसका निरन्तर प्रकाशमानपना न रहा और अन्तरवाला प्रकाशमानपना रहा। और विश्वका साक्षीपना न रहा।

'सहजका' अर्थ ऐसा होता है कि केवलज्ञानका ऐसा स्वभाव ही है, पंडित हेमराजजीने श्री प्रवचनसारकी गाथा ३७में कहा है कि "ज्ञानके स्वभावमें तर्क नहीं चल सकता है" इसलिये अकालमृत्यु परमें तर्क लगाना कि 'वह भगवानके ज्ञानमें उसका काल निश्चित नहीं है और जब प्रगट होगा तब जाननेमें आवेगा' ऐसे तर्कको स्वभावके स्वरूपमें स्थान ही नहीं है।

इसीप्रकार मोक्ष जानेवाले जीवके कर्मकी निर्जरा कब होगी और वह कब पूर्ण होगी, इस विषयमें अनियम है ऐसा मानकर भगवानके केवलज्ञानमें अनिश्चितपणाका तर्क लगाना अयोग्य है।

श्री गोम्मटसारके जीवकांड पृष्ठ ४३६में भी कहा है कि केवलज्ञानका और श्रुतकेवलीका ज्ञान एक जैसा ही है और इन दोनोंका ऐसा स्वभाव क्यों है ऐसा तर्क उठाना न्यायसे विरुद्ध है।

'विमल'का अर्थ मल न रहे, भविष्यकी विकारी पर्याय, अशुद्ध पर्याय किसप्रकार होगी वह जब तक पर्याय प्रगट न होवे तबतक अनिश्चित रहे ऐसा मानना 'विमलता'से विरुद्ध है।

'सकल'का अर्थ—परिपूर्ण, कोई भी बात अज्ञात न रहे। अज्ञानीकी पर्याय और विकारी पुद्गलकी पर्यायका समय-समयमें व्यय होता है और उसी समयमें नई-नई पर्याय उत्पन्न होती हैं, इसीप्रकार हरसमयमें किस पर्यायका व्यय होकर कौनसी पर्यायका उत्पन्न होना ऐसा ज्ञान न हो ऐसा बन सकता ही नहीं है इसलिए समय समयका परिणमन ज्ञेय है वह भगवानके ज्ञानमें प्रतिभासित होता ही है यदि न हो ऐसा माननेमें आवे तो सकलज्ञानी कैसा हो सकता है और फिर समय-समयकी पर्याय ज्ञेय किसप्रकार हो सकेगी? इसलिये भविष्यकी विकारी-पर्याय जबतक प्रगट नहीं होती है

तबतक वह अनिश्चित है ऐसा मानना ज्ञान और ज्ञेयके स्वरूपसे विरुद्ध है ।

"केवलज्ञानका कुछ और जानना अवशेष (बाकी) नही है" देखिये श्री प्रवचनसार गाथा ५१ पृ० ६७, प० हेमराजजी। पचास्तिकाय गाथा २४ पृष्ठ ६४, प० हेमराजजी, सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ८८, पचास्तिकाय श्री जयसेनाचार्य गाथा ४३ पीछेके नई गाथा ५ पृष्ठ ८१ मे कहा है कि भगवानको कुछ ज्ञान हुवे और कुछ न होवे ऐसा है ही नही, यदि कोई भी बात अनिश्चित हो तो उसका अज्ञान रहा परन्तु ऐसा हो सकता नही है ।

केवली भगवानके ज्ञानको विज्ञानघन कहा है वह भी सिद्ध करते हैं कि कोई भी पर्याय एक समय भी अनिश्चित होवे तो उसका विज्ञानघनपना नही रहेगा ।

यहाँ भी ज्ञान और ज्ञेय, ज्ञेय और ज्ञानका परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध किया है ।

२१३—प्रश्न—श्री समयसारकी गाथा २३ से २५ तककी टीकामे लिखा है कि जिसने समस्त सदेह, विपर्यय, अनध्यवसाय दूर कर दिये है और जो विश्वको (समस्त वस्तुओको) प्रकाशित करनेके लिये एक अद्वितीय ज्योति है, ऐसे सर्वज्ञका ज्ञान है उसमे अनध्यवसायका क्या अर्थ है ?

उत्तर—जो भविष्यकी विकारी पर्याय जबतक वह प्रगट न होवे तबतक वह अनिश्चित हो तो भगवानके ज्ञानमे अनिर्णय रहा अर्थात् 'अनध्यवसाय नामका दोष हुआ' ऐसा सर्वज्ञके ज्ञानमे होता ही नही है । सर्वज्ञपना पर्यायमे प्रगट हुआ उसी समयसे भविष्यकी पर्याय किसप्रकार होनेवाली है, कब होनेवाली है, निमित्त—उपादान क्या, निमित्त—नैमित्तिक क्या, अविभाग प्रतिच्छेद कितना है इन सबका स्वरूप न जाने तो वह सर्वज्ञ कैसा ?

देखिये ! इस गाथाकी टीका बडी उपयोगी है। श्री अमृत-चन्द्राचार्य सर्वज्ञज्ञानका आश्रय लेकर केवलज्ञानमें वस्तुका स्वरूप कैसा आया है वह अज्ञानीको बताते हैं और कहते हैं कि तुम ऐसा नहीं माननेसे स्वयं स्वतः अपने दोषसे अज्ञानी रहे हो। ऐसा समझना चाहिये कि सर्वज्ञ जैन धर्मका मूल है और उसके ज्ञानमें ज्ञेयका स्वरूप किसप्रकार आया है वह सर्वज्ञज्ञान अनुसार कहना चाहिए। 'जो विश्वको (समस्त वस्तुओंको) प्रकाशित करनेके लिए एक अद्वितीय ज्योति है, ऐसे सर्वज्ञज्ञानसे स्फुट प्रगट किये गये जो नित्य उपयोग स्वभावरूप जीव द्रव्य वह पुद्गल द्रव्यरूप कैसा होगया कि जिससे तू यह अनुभव करता है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है' ?

वह टीका श्रीकुन्दकुन्दाचार्य कृत समयसारकी गाथामे है और वही, गाथा २४मे सर्वज्ञके ज्ञानका आश्रय लिया है। जैनधर्मका स्वरूप ही ऐसा है कि सर्वज्ञके आश्रयमे ही सब ज्ञेयोका स्वरूप निश्चित करना चाहिये।

ज्ञेयका स्वरूप

२१८—प्रश्न—श्री प्रवचनसार गाथा ४१मे अनावरण, अतीन्द्रिय, सर्वज्ञ-ज्ञानका स्वरूप कहा है, उसमे लिखा है कि अनुत्पन्न एव व्यतीत पर्याय मात्र ज्ञेयताका अतिक्रमण न करनेसे ज्ञेय ही है उसका क्या अर्थ है ?

उत्तर—वह पर्याये तात्कालिकरूपसे ज्ञानमे ज्ञेय होती हैं, जब वह पर्यायें प्रगट होवे तब ज्ञानमे आवे उसके पहिले अनिश्चितरूपसे रहे और ज्ञानमे न आवे तो वह ज्ञेयताका अतिक्रमण हुआ अर्थात् ज्ञेय नहीं रहा। निरावरण ज्ञान ज्ञेय मात्रको (द्रव्य पर्याय मात्रको) जानता है। 'मात्र' शब्दसे स्पष्ट हुआ कि पर्याय विकारी हो कि अविकारी

हो। किन्तु पर्यायपनेको उलंघन नहीं करती है इसलिये 'पर्याय-मात्रमे ही उसका समावेश होगया'।

२१५–प्रश्न–ज्ञान–ज्ञेयका–और ज्ञेय ज्ञानका परस्पर निमित्तपना आत्माको 'निमूंढ़' कहनेमे आता है उसका क्या अर्थ है ?

उत्तर–"सादि अनन्त अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्ध सद्भूत व्यवहारनयसे तीन काल और तीन लोकके स्थावर–जगमस्वरूप समस्त द्रव्य–गुण–पर्यायको एक समयमे जाननेमे समर्थ सकल–विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञानरूपसे अवस्थित होनेसे आत्मा निर्मूढ है। (देखिये नियमसार गाथा ४३ पृ० ९२)

इसमे तीन काल और तीन लोकको एक समयमे जाननेकी सामर्थ्यता है, वह कब हो सकती है ऐसा विचार करने पर कोई भी भविष्यकी पर्याय स्वाभाविक हो कि विभाविक हो वह केवल-ज्ञान हुवे तबसे शुरू करके केवलज्ञानमे न आवे तो उसको ज्ञान कौन कहेगा ? पराकाष्ठाको पहुचनेवाले ज्ञानका स्वरूप अद्भुत है। विकारी पर्याय जब तक प्रगट न हो तबतक वह अनिश्चित है—ऐसा माननेवाला सर्वज्ञके स्वरूपको यथार्थपने नहीं जानता है, यहाँ 'समस्त' शब्द बड़ा उपयोगी है और वह पर्यायोको भी लागू पड़ता है। विकारी पर्याय पर्यायपनेका उलघन नही करती इस-लिये समस्त पर्यायोमे विकारी पर्याय भी आ जाती है।

ज्ञेयके लिये निमित्त है ऐसा नही माननेवालेका अभिप्राय श्री कुन्द-कुन्दाचार्यके अभिप्रायसे विरुद्ध है। देखिये श्री समयसारकी गाथा ३५६ से ३६५ पृष्ठ ४९६, ४९७, ४९८, ४९९ की टीका तथा श्री प्रवचनसारकी गाथा २६, ३६, ४३, २०० इत्यादि (देखिये इस लेखका पृ० ११०, १११)

२१६–प्रश्न–भविष्यकी विकारी पर्यायोको अनिश्चित कल्पना करने-वालोकी तरफसे क्या तर्क उठानेमे आते हैं ?

उत्तर–कब, कैसा निमित्त किसको कहाँ मिलेगा, उसकी कैसी प्रतिक्रिया

होगी यह बात अनिश्चित रहती है ऐसा तर्क है। अब देखिये कैसा निमित्त किसको कहाँ मिलेगा वह बात केवलज्ञानमें न आवे तो किस ज्ञानमें आवे? सर्वार्थ सिद्धि वचनिकाके पृष्ठ १६६, १६७में "ऋद्धि प्राप्त आर्य"का वर्णन, उसमें अष्टांग महानिमित्त ज्ञान' का स्वरूप बताया है, ऐसे जीवको भी अतीत और अनागत बहुत प्रकारकी अशुद्ध पर्यायोंका ज्ञान होता है तो केवलीको उसका पूर्ण ज्ञान न होवे ऐसा कैसे बन सकता है? केवलज्ञानके स्वभावमें किसी तर्कको अवकाश ही नहीं है। इसलिये तर्क उठाकर कहा है कि—केवलज्ञानमें कुछ भी 'अनिश्चित' रहता है—इसप्रकार कहना न्यायसे विरुद्ध है। समय-समयकी पर्यायका उत्पाद, व्यय, कारण कार्य, उपादान–निमित्त क्या है वह सब श्री प्रवचनसारकी गाथा ३७, ३८ और ३९के अनुसार केवलज्ञानी जानता ही है, श्री पञ्चास्तिकाय पृष्ठ ६८, १५५ और २२४में केवलज्ञानका स्वरूप निम्न प्रकार कहा है।—क्रमकरण व्यवधान रहित त्रयलोक्य–उदर-विवर्ती, **समस्त वस्तुगत अनन्त धर्म प्रकाशक, अखण्ड प्रतिभासमय** केवलज्ञान (पृ० ६८ गाथा ४९) **समस्त वस्तुगत अनन्त धर्म युगपत्; प्रकाश द्वारा परम चैतन्य विलास लक्षण द्वारा ज्ञान गुण** (पृ० १५५ गाथा ९६) **समस्त वस्तुगत अनन्त धर्मोंके युगपत विशेष परिच्छित समर्थ केवलज्ञान।**

(पृ० २२४ गाथा १५४ वि० स० १९७२ आवृत्ति)

भविष्यकी विकारी पर्याय भी वस्तुका धर्म है और ज्ञेय है अत वह पर्याय भी धर्मपनेको उलंघन नहीं करती है। इसलिये केवलज्ञान **तात्कालिक रूपसे** विशेष प्रकारसे (—कुछ भी अवशेष रहे बिना) उसको जानते हैं, और ज्ञेय अपना स्वरूप अकंपपने ज्ञानको अर्पण करते हैं ऐसा समझना।

२१७–प्रश्न—भविष्यकी विकारी पर्यायको अनिश्चित माननेमें कोई विचित्रता आती है?

उत्तर-हाँ आती है—उसका खुलासा इसप्रकार है—

अनिश्चित माननेवालेको ऐसा होगा कि भगवानके समोसरण मे सौ इन्द्र आये, सभा लगी वह कव उठेगी, इसका ज्ञान भगवान-को केवलज्ञान हुआ तहाँसे नही हुआ क्योकि वह सब विकारी जीवोकी और विकारी पुद्गलोकी पर्यायें है, जब समोसरण उठेगा तब भगवानके ज्ञानमे आयेगा वह विचित्रता आई, अवधिज्ञानी हैं और मन पर्ययज्ञानी हैं वह सब तो पहलेसे जान सकते हैं कि वह कब उठेगा और भगवान पहलेसे नही जानते ऐसी विचित्रता विकारी पर्यायोको अनिश्चित माननेमे आई। अत केवलज्ञान—स्वभावका तर्क न उठाकर जैसा आगममे कहा है वैसे सर्व स्वरूपको भगवान जानते हैं ऐसा मानना चाहिए।

श्री सर्वार्थ सिद्धि, श्री अकलकदेव कृत राजवार्तिक, श्रीसमयसार, श्री गोम्मटसार, श्री प्रवचनसार, श्री समाधितक, श्री धवल, जयधवल, प्रमेयकमलमार्तंड, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, पद्मनन्दि आदि सब जगह केवलज्ञानका स्वरूप आता है उन सबका वर्णन करनेसे यह लेख बहुत बडा होजाता है इसलिये यहाँ पर लिखनेमे नही आया है। कृपा करके जिज्ञासु पढ लेवें।

भगवान्के भामण्डलमे जो देखे उसको ७ भव देखनेमे आते हैं और भगवानके केवलज्ञानमे न आवे वह दूसरी विचित्रता है। भव जीवकी विकारी पर्याय है और उसके साथ आयुकर्म भी पुद्-गलकी विकारी पर्याय है।

२१८—प्रश्न—केवलज्ञानका स्वरूप क्रम और व्यवधानसे रहित कहने-मे आता है उसका क्या अर्थ है?

उत्तर—यदि कोई भी पर्याय अनिश्चित हो तो उसके प्रगट होनेके पहिले उसका ज्ञान नही होगा, इसलिये वह ज्ञान केवलज्ञान नही हुआ। केवलज्ञानमे क्रम आया, अक्रम नही आया। केवलज्ञानमे कोई पर्दा, बाधा, अन्तराय नही है जिज्ञासुओको यह स्वीकार करना चाहिए

कि—उत्पाद, व्ययरूप पर्याय हर समयमे होती है और उन उत्पाद, के लिए क्या-क्या उपादान कारण हैं, क्या-क्या निमित्त कारण वह सब केवलज्ञानमें बराबर आजाते हैं, यदि न आवे तो केवलज्ञान नहीं कहलाता और वह पर्यायें ज्ञेय नहीं कहलातीं, इसलिये कब, कैसा निमित्त मिलेगा वह सब अनिश्चित बात है ऐसा मानना तात्विक नही है, कल्पित है।

किस समयमे कैसा निमित्त मिलेगा यह सब अवधिज्ञानमे, मन पर्यय ज्ञानमे, और योगियोको मालुम पड़ता है, साथ ही अष्टाग महा निमित्तज्ञानमे भी ज्ञात होता है, और भगवान-को केवलज्ञानमे भविष्यकी पर्याय ज्ञात न हो ऐसी बात जैन धर्ममे कैसे चल सकती है ?

२१९—प्रश्न—स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षाकी गाथा ३२१से ३२३मे जो कहा है उससे क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर—जिस जीवको जिस विधिसे, जिस देशमें, जिस कालमें नियत है, जिनेन्द्रदेवने उसको जाना है। इससे उस जीवको उस देशमे उस विधिसे, उसकालमे नियमसे जन्म-मरण होता है उसको दूसरा कोई बदल नही सकता है। उसका अर्थ यह हुआ कि होनेवाली जन्म मरणकी जो विकारी पर्याय है वह भगवान केवलज्ञानमे जानते हैं, उसका काल भी जानते हैं, उसका क्षेत्र भी जानते हैं, उसकी विधि भी अर्थात् उपादान-निमित्तरूप सामग्री सब नियतरूपसे जिनेन्द्र देव जानते हैं।

कैसा निमित्त किसको कहाँ मिलेगा, किस क्षेत्रमें मिलेगा उसकी कैसी प्रतिक्रिया (विधि) होगी, यह बात अनिश्चित रहती है ऐसी मान्यता इन गाथाओंसे गलत सिद्ध होती है।

अनेकान्त

निश्चित–अनिश्चित

२२०—छ द्रव्योकी हरेक पर्याय हर समयमे (अतीत, वर्तमान, अनागत) वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे निश्चित है। परद्रव्य क्षेत्र, काल भावसे निश्चित नही है अर्थात् अनिश्चित है, किन्तु इसलिये उसका निश्चित काल मिट जाता नही है। श्री समयसार सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकारकी गाथा ३०८ से ३११मे सब जीव और अजीवकी पर्यायोको क्रम-नियमित कहा है, कोई भी पर्यायको क्रम अनियमित कहा ही नही है और पंडित जयचन्द्रजीने नियमितका अर्थ निश्चित किया है, इससे सिद्ध होता है कि सर्व छह द्रव्योकी अनादिसे–अनंत काल तककी पर्यायोका कालक्रम निश्चित ही है।

२२१—द्रव्यकी व्याख्या अनादि अनंत पर्यायोंका पिंड ऐसा करनेमें आई है और गुणकी व्याख्या अपनी अनादि अनन्त पर्यायका पिंड ऐसा करनेमें आई है भूत, वर्तमान और भावी सब पर्याय हरेक द्रव्यकी 'स्वोचित' ही होती है ऐसा द्रव्य समूहका ज्ञेय स्वभाव है और 'स्वोचित' पर्याय हो वे नियमसे निश्चित ही हो सकती है। देखिये प्रवचनसार गाथा २३६ की टीका। उस टीकाका उपयोगी भाग निम्न अनुसार है —

× × × "भूत-वर्तमान-भावी स्वोचित पर्यायोंके साथ अशेष द्रव्य समूहको जाननेवाले आत्माको जानता है।"

बौद्धमत

२२२—एक भी विकारी-पर्यायका, कि उसका एक भी धर्मका एक समय भी परिपूर्ण ज्ञान वर्तमानमे न हो तो द्रव्यका पूर्णज्ञान, गुणोका पूर्णज्ञान और पर्यायोंका पूर्ण ज्ञान कभी भी नही होगा। ज्ञानका ऐसा अपूर्णस्वरूप तो अन्यधर्मी मानते हैं किन्तु जैनधर्म

उनसे विरुद्ध मानता है, देखो सूरतसे प्रकाशित पृष्ठ १६२ श्री प्रवचनसार गाथा ४१ मे श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि:—

२२३—"इसप्रकार **अतीत व अनागत पर्यायें वर्तमान ज्ञानमें प्रत्यक्ष नहीं होती हैं ऐसे बौद्धोंके मतको निराकरण करते हुए तीन गाथायें कहीं,** उसके पीछे इन्द्रियज्ञानसे सर्वज्ञ नही होता है किन्तु अतीन्द्रिय ज्ञानसे होता है ऐसा कहकर नैयायिक मतके अनुसार चलनेवाले शिष्यको समझानेके लिये गाथा दो, ऐसे समुदायसे पाँचवें स्थलमे पाँच गाथायें पूर्ण हुई।"

२२४—भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने वे गाथा ३७, ३८ और ३९ मे बौद्धोके मतका निराकरण किया है, इससे सिद्ध हुआ कि अनागत पर्यायें ज्ञानमे एक समय भी प्रत्यक्ष न होवे तो—उसका एक भी अंश, उसका एक भी धर्म, उसका प्रदेश, उसका काल, उसका आकार (स्वरूप) आदिमेसे एक छोटे मे छोटा अंश अर्थात् अविभाग प्रतिच्छेद ज्ञानमे नही आवेगा किन्तु ऐसी मान्यता जैनकी नही होती।

२२५—श्री प्रवचनसार गाथा ४०, ४१ नैयायिकमतका अभिप्राय असत्य है ऐसा बतलाते हैं, जो कोई एक भी भविष्यकी विकारी पर्याय सर्वज्ञके ज्ञानमे प्रत्यक्ष नही होती है ऐसा माननेवाला तो जिसको सबसे ज्यादा इन्द्रीय और मानसिक ज्ञान हो उसको ही सर्वज्ञ मानते है, जो कि यह अभिप्राय अयथार्थ है। मतिज्ञान आदि चारो ज्ञान क्रम-क्रमसे वर्तन करते इसलिये वे क्षायोपशमिक हैं, इससे सिद्ध हुआ कि अपनेको जैन मानने पर भी जो जीव नैयायिकके अनुसार माने तो उसकी मान्यता असत्य है, वह सर्वज्ञकी आज्ञाके बाहर है।

वर्तमानगम्य जगत परसे निश्चित पर्यायकी सिद्धि

२२२—वर्तमानमे **जोन काल्वर्ट** नामका एक व्यक्ति अमेरिकामे रहता है

जो कि तत्त्वज्ञानमे अपरिचित है। इस पर भी वह कल, किस पेपर मे कौनसा समाचार आवेगा और किसी भी भाषाके प्रथम पृष्ठपर मुख्य समाचारका हेडिंग (Hagding) क्या आवेगा वह आज स्पष्ट बता देता है। इस विषयमे ता० १४ से ता० १७-५-१९६३ के बम्बईके प्रसिद्ध पत्र टाइम्स ऑफ इन्डिया, जामे जमशेद, जन्मभूमि पत्रोमे देख लेवे उसमे विस्तारसे वर्णन है।

२२३–मिस्टर–पीटर नामका एक भविष्य ज्ञानी है जिसका जन्म हालेंडमे हुआ है। आजकल वह अमेरिकामे रहता है। वह दूसरे व्यक्तियोके भविष्यमे क्या–क्या मुख्य घटनायें होनेवाली हैं वह कुछ समयकी मर्यादा तक की कह देता है। यह बात कसौटी पर लेनेसे सच्ची मालूम पडी है।

२२४–अब देखिये कि वर्तमान कालके कितनेक शास्त्र अभ्यासी कहते है कि ज्ञेयोमे विकारी पर्याय अनिश्चित है, जब वह वर्तमान रूप प्रगट होगी तब ज्ञानमे प्रत्यक्ष होगी जब कि वर्तमानमे तत्त्वज्ञानसे अपरिचित व्यक्ति भी भविष्यकी बातें निश्चित जान लेते हैं और अनादिसे अनन्त काल तकका केवलज्ञानी और सिद्ध भगवानके ज्ञानमें वह अनिश्चितरूपसे है ऐसा मानना !.. देखिये कैसी विचित्रता है। जो कालवर्ट और पीटर अपना भविष्य नही जान सकते और दूसरोका वह भविष्य बता देते हैं।

२२५–भविष्यमें होनेवाली विकारी पर्यायें अनिश्चित हैं, वह किसने जाना ? केवलज्ञानीके ज्ञानमें तो तात्कालिकरूप और विशेषरूपसे प्रत्यक्ष निश्चित ही दिखता है, अवधिज्ञानीको भी अपने ज्ञानके विकासकी मर्यादाके अनुसार निश्चित दिखता है और उसीप्रकार मन पर्यय ज्ञानीको, योगियोको, श्रुतकेवलियोको, श्रुतज्ञानियोको और अष्टाग महा निमित्त ज्ञानियोको निश्चितरूपसे दिखते है।

२२६–आगम तो भगवान अरहत सर्वज्ञ उपज्ञ है अर्थात् सर्वज्ञने स्वयं जानकर उपदिष्ट है,उसमें तो कोई भी जगह पर केवलज्ञानका विषय

(ज्ञेय) अनिश्चित हो ऐसा कहा नही है इससे सिद्ध न हुआ कि—वह अनिश्चित बात कल्पित है । (देखिये श्री प्रवचनसार गाथा ३४ और उसकी टीका ।)

अकाल—अनियम—अनवस्थित—अनियत—अनिश्चित

२२७–जिज्ञासुओको सावधानी पूर्वक शास्त्रके शब्दोका अर्थ करना चाहिये । अर्थ करनेकी रीतिमे किस नयका कथन है वह भी समझ लेना चाहिये । किसी भी शब्द और वाक्यका अर्थ तत्त्व स्वरूपसे विरुद्ध नही होना चाहिए ।

(१) अकाल :—

२२८–सोपक्रम आयुवाले जीवके नियमसे आयु कर्मकी उदीरणा होती है; उस मरणको व्यवहारनयसे अकाल—मृत्यु कहते हैं और निश्चयनय से सब मरणको '**स्वकर्म कृत काल कला**' कहा है, कोई भी मरण आगे–पीछे नही होता है । (देखिये अनित्य पचाशत श्लोक १८)

२२९–'**अकाल**' शब्द भगवान पद्म प्रभुकी पूजामे भी आता है, वह निम्न प्रकार हैं '—

इस विकट काल **अकाल** माही पद्म प्रभु पद ध्याइये,
तिहिं भक्ति वस निज लहै पद्मा सुख अनोपम पाइये ।

२३०–इस पक्तिमे '**अकाल**' शब्दका अर्थ अनिश्चित काल हो सकता नही है किन्तु पचमकालको विकट काल कहनेमे आया है इसलिये उसको 'अकाल' कहा है 'अकाल मृत्यु'मे अकालका अर्थ अनिश्चित काल ऐसा होता नही है । आगममे कोई जगह पर ऐसा अर्थ करनेमे आया ही नही है । भगवती आराधनामे आयु कर्मकी उदीरणाको अकाल कहा है । वह अपने स्वकालमे हो होती है, अन्य कालमे नही । जिस जीवको अकाल मृत्यु हुई ऐसा कहनेमे आता है उसने तो पूर्व भव मे सोपक्रम आयुका बध किया था, (निरुपक्रम आयुका बध नही किया था) इतना आयु कर्मके स्वरूप भेदोको बतानेके लिये अकाल

-मृत्यु कहनेमे आया है। इसलिये वे अपने निश्चितकालमे नही होते है ऐसा नही है।

(२) अनियम :—

२३१—'अनियम' शब्दके प्रयोगसे अनिश्चितपना मान लेना न्यायसे विरुद्ध है। 'अनियम'—का अर्थ नियम नही इतना होता है। राजवार्तिकमे अध्याय पहला सूत्र तीसरेकी टीकामे 'वार्तिक' सातमे शिष्यने एक प्रकार कालका नियम सब भव्योके लिये कहा था। ऐसा नियम नही है, वह बतानेके लिये 'काल अनियमात्' ऐसा कथन वार्तिक ९ मे आया है, परन्तु मोक्ष जानेवाले जीवको स्वकाल अनिश्चित है ऐसा उसका अर्थ होता नही है। मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीवोको निर्जरा और मोक्षका काल अनिश्चित है ऐसा अर्थ करना वह श्री धवलासे श्री प्रवचनसारमे जयसेनाचार्यकी टीकासे, द्रव्य सग्रहकी टीकासे, श्री समयसार कलश टीकासे तथा श्री प्रवचनसार गाथा २०० की टीकामे विरुद्ध है।

(३) अनवस्थित :—

२३२—ससारी जीवकी पर्यायको स्वभावसे अनवस्थित कहा है, उसका अर्थ इतना है कि कोईका स्वभाव **केवल अविचल एक—रूप रहनेवाला नहीं है;** इसका अर्थ कौनसी विकारी पर्याय कब होगी वह निश्चित नही है ऐसा नही होता। 'अनवस्थित'का अर्थ विभावरूप पर्याय होता है, अर्थात् मनुष्यादि पर्याय विनश्वर है ऐसा उसका अर्थ समझ लेना। देखिये श्री प्रवचनसार गाथा १२० पृष्ठ १६९ श्री जयसेनाचार्यकी टीका—सिद्धकी पर्याय ऐसी न होनेसे अविनाशी कहनेमे आती है और ससारी पर्याय इससे विरुद्ध है। प० हेमराज जी लिखते हैं कि, "इसलिये ससारमें मनुष्यादि कोई भी पर्याय **अविनाशी नहीं है।** स्वभाव—ही से **सब अस्थिररूप है।**" इसलिये

अनवस्थितका अर्थ अस्थिर अर्थात् सिद्धकी अविनाशी पर्यायसे विरुद्ध ऐसा अर्थ होता है ।
(देखिये श्री अमृतचन्द्र आचार्यकी टीका पृ० १५७ और श्री समयसारकी गाथा २०३ की टीका)

(४) अनियत :—

२३३—वह विभाव पर्याय जो अस्थिर पर्याय है उसीको अनियत कहनेमे आता है क्योकि वह एकरूप नही रहती है, किन्तु हरेक विभावपर्यायका स्वकाल है वह अन्य कालमे होती नही है । देखिये इस लेखका पृष्ठ २४८, २४६, २५०)

(५) अनिश्चित :—

२३४—अनिश्चित पर्यायका अर्थ अस्थिर होता है उसको अनियत भी कहते है लेकिन उसका स्वकाल नियत नही है ऐसा नही है। नियत है—निश्चित है । यदि निश्चित न हो तो वह ज्ञेयकी व्याख्यामे आवेगा ही नही (देखिये ज्ञेयका स्वरूप इस लेखमे अनेक स्थल पर आया है)

२३५—प्रथम प्रश्नका उत्तर पूर्ण करके पूर्व, भगवान अमृतचन्द्राचार्यके कलश ६२ पर लक्ष्य खीचनेमे आता है वह कलश निम्न प्रकार है —

आत्मा ज्ञान स्वय ज्ञान ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
पर भावस्य कर्तात्मा मोहोय व्यवहारिणाम् ॥

अर्थ —आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वय ज्ञान ही है, वह ज्ञानके अतिरिक्त अन्य क्या करे ? आत्मा पर भावका कर्त्ता है ऐसा मानना (तथा कहना) सो व्यवहारी जीवोका मोह (अज्ञान) है ।

जयवंत वर्तो स्याद्वाद मुद्रित जैनेन्द्र शब्द ब्रह्म ।
जयवंत वर्तो शब्दब्रह्ममूलक आत्म तत्त्वोपलब्धि ॥

(क्रमश)

लेख नंबर ६ गतांक से चालू

धर्मका मूल सर्वज्ञ है, सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थोंका श्रद्धान विपरीत अभिप्राय रहित और भावभासन सहित श्रद्धान है, जो निज शुद्ध अंत.तत्त्वके आश्रयसे ही हो सकता है। जो जीव अपने हित (-सुख) के इच्छुक हैं, उनको सात तत्त्वमें भी मोक्षतत्त्व (-अपना सर्वज्ञ वीतराग स्वभाव) कैसा है और अपूर्व साधन द्वारा मोक्षदशा प्रगट करनेवाले अर्हन्त और सिद्ध परमात्मा (सर्वज्ञ) का स्वरूप क्या है वह विशेषरूपमें अच्छी तरह जानना ही चाहिये। जिनको अपूर्व तत्त्वज्ञानकी जिज्ञासा होगी, ससार-भव-दु:खसे भयभीत होगा, यथार्थता-वीतरागताको ही ग्रहण करना चाहते हैं वे मध्यस्थतासे और धैर्यसे इस लेखमालाको पढकर सच्चे समाधानको प्राप्त करेंगे।

प्रश्न २ की

भूमिका

प्रथम प्रश्नके जवाबका विशेष खुलासा अन्तिम प्रश्न तक आवेगा। इसलिए उसको बराबर पढ लेना।

जिज्ञासुओं को
विशेष समझने योग्य
(१)

२३६—श्री जैन सिद्धान्तमे 'समय' तीन प्रकारका है —

(१) ज्ञान समय (२) अर्थ समय (३) शब्द समय, श्री पचास्तिकाय गाथा ३ की टीकामे कहा है कि —

(१) पाँच अस्तिकायका 'समवाद' अर्थात् मध्यस्थ (रागद्वेषसे

विछिन्न नहीं हुआ) पाठ (मौखिक या शास्त्रारूढ निरूपण) वह शब्द समय है अर्थात् शब्दागम वह शब्द समय है।

(२) मिथ्यादर्शनके उदयका नाश होनेपर उस पंचास्तिकायका ही सम्यक् अवाय अर्थात् सम्यग्ज्ञान वह ज्ञानसमय है, अर्थात् ज्ञानागम वह ज्ञान समय है।

"(३) कथनके निमित्तसे ज्ञात हुए उस पंचास्तिकायका ही वस्तुरूपसे समवाय अर्थात् समूह वह अर्थ समय है अर्थात् सर्व पदार्थ समूह वह अर्थ समय है"।

(२)

२३७—श्री प्रवचनसार भगवानकी दिव्यध्वनिका सार है क्योंकि प्रवचनका अर्थ दिव्यध्वनि होता है। श्री प्रवचनसारमें तीन अधिकार आये हुवे हैं:—

(१) ज्ञान अधिकार (२) ज्ञेय अधिकार (३) चरणानुयोग अधिकार श्री प्रवचनसारके ज्ञान अधिकारमें गाथा ४९की टीकामें कहा है कि —

"अपनेको जानने पर समस्त ज्ञेय ऐसे होते हैं कि मानों वे ज्ञानमें स्थित ही हों, क्योंकि ज्ञानकी अवस्थामेंसे ज्ञेयाकारोंको भिन्न करना अशक्य है। यदि ऐसा न हो तो (यदि आत्मा सबको न जानता हो तो) ज्ञानके परिपूर्ण आत्मसचेतनका अभाव होनेसे परिपूर्ण एक आत्माका भी ज्ञान सिद्ध न हो" यह ज्ञान समय हुआ।

श्री प्रवचनसार ज्ञेय अधिकारकी गाथा २०० में निम्न प्रकार कहा है —

"ज्ञेय ज्ञायक लक्षण सम्बन्धकी अनिवार्यताके कारण ज्ञेय ज्ञायकको भिन्न करना अशक्य होनेसे विश्वरूपताको प्राप्त होता

है इसलिए जैसे केवली और सम्यक् श्रुतज्ञानी जानते हैं वैसा ही ज्ञेयका स्वरूप, परिणमन आदि स्वयमेव–स्वत होता है इससे विरुद्ध कभी होता ही नही है। ज्ञान ज्ञेयको जबरदस्तीसे परिणमित करावे और ज्ञेयज्ञानको जबरदस्तीसे परिणमित करावे तो निमित्तने उपादान पर निश्चयसे प्रभाव डाला ऐसा हो जावेगा। निमित्तका कुछ भी प्रभाव उपादान पर हो तो वे दोनो द्रव्य एक हो जावेंगे। निमित्त होते ही हैं किन्तु निमित्त चाहिये ऐसी मान्यतामे निमित्ताधीन दृष्टिरूप मिथ्यात्व और अनवस्था दोष आता है।

ज्ञानमे ज्ञेयका जैसा स्वरूप, परिणमन आदि आता है, वैसा ही ज्ञेयका स्वरूप और परिणमन स्वयमेव–स्वत तीन लोक और तीन कालमे होता है, जैसा ज्ञेयका स्वरूप और परिणमन है वैसा ही ज्ञान जानता है अर्थात् उसका ज्ञान स्वयमेव–स्वत करता है, तीन लोक और तीन कालमे इससे विपरीत होता नही है।

२–इसलिए स्वामी विद्यानन्दजी अपने 'पात्रकेशरी' स्तोत्रमे केवलज्ञानका शब्द दिया है और कहा है कि भगवान्के ज्ञानके वश सब पदार्थोंका परिणमन तीनो काल होता है। इसप्रकार सब आचार्योंका एक ही प्रकारका मत है। कोई भी भविष्यकी विकारी पर्याय और उसका निमित्त भगवान्के ज्ञानमे तात्कालिक–रूपसे न आवे ऐसा बन सकता ही नही है।

(३)

३–सम्यक्ज्ञानके पाँच प्रकार हैं —

(१) सम्यक्मति (२) सम्यक्श्रुत (३) सम्यक् अवधि (४) मन पर्यय (५) केवलज्ञान।

४–एकसे चार तकके ज्ञान छद्मस्थके होते हैं। केवलज्ञान सर्वज्ञको होता है। छद्मस्थका सम्यक्ज्ञान चारमेसे किसी भी प्रकारका हो वह **सब केवलज्ञानानुसार है**। केवलज्ञानमे एक प्रकारसे जाननेमे आवे और यह चार प्रकारका सम्यक्ज्ञानमे उससे उल्टा (विपरीत) जाननेमे आवे तो उसका सम्यक्रूप रहेगा ही नही युगपत् सर्व

भासन हो या कम भासन हो यह दूसरी बात है। (देखिये स्वामी समन्तभद्र कृत 'आप्तमीमांसा' श्लोक १०१)।

२४५—वस्तु स्वरूपका जो ज्ञान छद्मस्थ दशामे निश्चित् किया था वह ही केवलज्ञानमे जाना तब प्रतीति परम अवगाढ होती है। केवलज्ञान होने पर जो छद्मस्थ अवस्थाका सम्यक्ज्ञान असत्य था ऐसा जाननेमे आवे तो श्रद्धा भिन्न-भिन्न होगी और ज्ञान भी मिथ्या होगा, छद्मस्थके ज्ञानमे और केवलीके ज्ञानमे हीनता—अधिकता, अस्पष्टता—स्पष्टताका अंतर हो वह दूसरी बात है किन्तु जिसप्रकार वस्तु केवलज्ञानमे अनादि अनन्त ज्ञात होती है उसीप्रकार छद्मस्थके सम्यकज्ञानमे भी वस्तु अनादि अनन्त ज्ञात होती है। छद्मस्थके ज्ञानमे जो वस्तु अनादि अनन्त जाननेमे आती है वही वस्तु केवलज्ञानमे भी अनादि अनन्त जाननेमे आती है क्योंकि सब सम्यक्ज्ञान केवलज्ञानानुसार है—एक दूसरेसे विरुद्ध नही होते हैं। (देखिये श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक देहलीसे प्रकाशित हिन्दी अध्याय नं० ९ पृष्ठ ४७५)

२४६—इस विषयमे श्रीगोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा १९६ की टीकामे कहते हैं —

"अरे तार्किक भव्य! संसारी जीवोका परिमाण **अक्षयानन्त है इसलिये केवली केवलज्ञान दृष्टिसे और श्रुतकेवली श्रुतज्ञान दृष्टिसे ऐसा ही देखा है। इसलिए यह सूक्ष्मता तर्कगोचर नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण और आगम प्रमाणसे विरुद्ध होनेसे वे तर्क अप्रमाण हैं।** जैसे किसीने कहा कि अग्नि उष्ण नही क्योंकि अग्नि है वह पदार्थ है जो जो पदार्थ हैं वे-वे उष्ण नही जैसे जल उष्ण नही है ऐसा तर्क किया परन्तु **यह तर्क प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध है** अग्नि प्रत्यक्ष उष्ण है इसलिए यह तर्क प्रमाण नही है ××ऐसे ही **जो केवली प्रत्यक्ष और आगमोक्त कथन उससे विरुद्ध होनेसे तेरा तर्क प्रमाण नहीं।**×××

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो,
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं ।। ३६९ ।।
श्रुतकेवलं च ज्ञानं द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात् ।
श्रुतज्ञानं तु परोक्षं प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानं ।।३६९।।

टीका—श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों समस्त वस्तुओंके द्रव्य गुण पर्याय जाननेकी अपेक्षा समान हैं। इतना विशेष श्रुतज्ञान परोक्ष है, केवलज्ञान प्रत्यक्ष है।

भावार्थ:—जैसे केवलज्ञानका अपरिमित विषय है वैसे ही श्रुतज्ञानका अपरिमित विषय है। शास्त्रसे सभीको जाननेकी शक्ति है परन्तु श्रुतज्ञान सर्वोत्कृष्ट होने पर सर्व पदार्थोंके विषय परोक्ष कहना अविशद-अस्पष्ट ही है क्योंकि अमूर्तिक पदार्थोंके विषय या सूक्ष्म अर्थ पर्यायोंके विषय या अन्य सूक्ष्म सूक्ष्म अंशोंके विषय विशदता करके प्रवृत्ति श्रुतज्ञानकी नहीं होगी। और जो मूर्तिक व्यंजन पर्याय या अन्य स्थूल अंश इस ज्ञानके विषय है उनके विषय भी अवधिज्ञानादिकी भाँति प्रत्यक्षरूप नहीं प्रवर्ते हैं, इससे श्रुतज्ञान परोक्ष है, और केवलज्ञानको प्रत्यक्ष कहिए विशद और स्पष्टरूप मूर्तिक अमूर्तिक पदार्थ *स्थूल सूक्ष्म पर्याय उनके विषै प्रवर्तें हैं, क्योंकि समस्त आवरण और वीर्यांतरायके क्षयसे प्रगट होते हैं, इसलिए प्रत्यक्ष है। 'अक्ष' कहिए आत्मा उसके प्रति निश्चित होकर परद्रव्यकी अपेक्षा नहीं चाहते हैं इसलिए प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्षका लक्षण विशद या स्पष्ट है। जहाँ अपने विषयको जाननेमें कमी नहीं होती उसको विशद या स्पष्ट कहते हैं और उपात्त या अनुपात्तरूप परद्रव्यकी अपेक्षा सहित जो होता है उसको परोक्ष कहते हैं। इसका लक्षण अविशद अस्पष्ट जानना। मन नेत्र अनुपात्त हैं अन्य चार इन्द्री उपात्त हैं। इसप्रकार श्रुतज्ञान केवलज्ञान विषय प्रत्यक्ष परोक्ष

* संस्कृतमें 'अथ व्यंजन पर्याय' तथा 'सर्वमें' ऐसा शब्द आया है। इन शब्दोंका स्पष्टीकरण उपसंहारमें आवेगा।

लक्षण भेदसे भेद है और विषय अपेक्षा समानता है । इसलिए श्री समन्तभद्राचार्यने देवागम स्तोत्र विषे कहा है:—

स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्व तत्त्व प्रकाशके ।
भेद साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम भवेत् ॥

इसका अर्थ —**स्याद्वाद तो श्रुतज्ञान और केवलज्ञान यह दोनों सर्व तत्त्वके प्रकाशी हैं** परन्तु प्रत्यक्ष परोक्ष भेदसे भेद पाते हैं इन दोनो प्रमाणोके विषय अन्यतम जो एक सो अवस्तु है एकका अभाव माने तो दोनोका अभाव–विनाश जानना" अर्थात् इनमेसे एक ही कहिये और एक न कहिए तो ऐसा अन्यतम होय तो अवस्तु होय (देखिये श्री आप्तमीमासा हिन्दी पृष्ठ १०९) वस्तुरूपसे यह दोनो एक दूसरेसे भिन्न नही है । (देखिये पण्डित टोडरमलजीकी रहस्य पूर्ण चिट्ठी देहलीसे प्रकाशित पृष्ठ ५१२)

२४९–नोट —केवलज्ञानमे सर्व पदार्थ 'निश्चित्' हैं कोई भी पदार्थ उपादान–निमित्त और उसका कोई भी धर्म अश अनिश्चित है ही नही ऐसा बतानेके लिए टीकामे 'निश्चित्' शब्द आया हैं । ऐसा न माने और कोई भी अशको अनिश्चित माने वह अल्पज्ञानको केवलज्ञान मानते है । उसको सर्वज्ञका ज्ञान पराकाष्ठा रूप परिणमित है, ऐसी श्रद्धा है ही नही ।

श्री प्रवचनसारकी गाथा ८०मे स्पष्ट लिखा है कि जो जीव अरहन्तदेवका द्रव्यत्व, गुणत्व और पर्यायत्वको यथार्थपने जानते हैं उसका पुरुषार्थ परसम्मुखसे हटकर स्वसन्मुख हुवे बिना रहता नही है और उसीप्रकार आत्माका ज्ञाता होजाता है ।

जो जीव अरहन्तकी पर्यायको (–केवलज्ञानकी पर्यायको) पराकाष्ठारूपसे मानते नही है अर्थात् कोई भी विकारी पर्यायोको और उसके निमित्तादिको अनिश्चित् मानते हैं उन जीवोकी पर्याय सदा परसन्मुख रहेगी, स्वसन्मुख होगी ही नही, अर्थात् परकी कर्त्ताबुद्धि, परसे लाभ-नुकसानकी बुद्धि, और रागके कर्त्तापनाकी बुद्धि जो

अनादिसे चली आती है, उसकी अभाव होगा ही नही, उसका दृष्टि संयोगकी ओर झुकनेवाली और सदैव परद्रव्य अर्थात् निमित्त आधीन रहेगी और उसको स्वाधीनताका प्रगटपना कभी होगा ही नही।

२५०—'अनिश्चित' शब्दका अनेक अर्थ होता है, जब स्व-समय अथवा स्वभाव भाव (एक तरफ) और पर समय अथवा विभाव भाव (दूसरी तरफ)का प्रश्न हो तो विकारी भाव जीवका है कि पुद्गलका है, वे अपने स्वभावमे नियत, निश्चय, स्थिर, एकरूप रहे तो उसको 'निश्चित' कहते हैं और जो अपने स्वभावमे निश्चल न हो और विकाररूप परिणमे तो उसको अनियत—अनिश्चित कहते हैं, किन्तु वह दोनो प्रकारकी पर्यायें द्रव्योकी भावगत पर्यायें हैं उनका समय सदैव स्वकालसे निश्चित हो होता है और केवलज्ञानमे वह परिपूर्णरूपमे उसके निमित्त सहित भासते हैं, केवलज्ञानमे वे परिपूर्ण रूपसे निश्चित् ही हैं, अनिश्चित हैं ही नही अतः कब कैसा निमित्त मिलेगा कैसी उसकी प्रतिक्रिया होगी आदि बातें अनिश्चित रहती हैं" इसप्रकारकी जिसकी मान्यता है वह मान्यता केवलज्ञानको अस्वीकार करनेवाली है केवलज्ञान 'सर्व भावगत' है यह सब बातें आगे आचुकी हैं इसलिए किसी भी पर्यायको 'अनिश्चित्' मानना न्याय विरुद्ध है, सर्वज्ञके ज्ञानमें छः द्रव्य सर्वकाल (अस्तिसे) और आदि अन्त रहित (नास्तिमें) इसप्रकार अनेकान्त स्वरूप देखनेमें आते हैं। (From eternity and end less)

२५१—श्री प्रवचनसारमे ज्ञेय अधिकार आया है, ज्ञेय अधिकारकी ३ (९५) ४ (९६) ५ (९७) ६ (९८) मे उसका वर्णन है।

श्री प्रवचनसार गाथा ९५मे सर्वज्ञ भगवान् 'द्रव्य' किसको कहते हैं वह बतलाते हैं, स्पष्टताके लिए उसमें 'ध्रुवन्ति' शब्द आया है, गाथा ९६मे 'द्रव्य'का अस्तित्व सर्वकाल है ऐसा कहते हैं, गाथा ९७मे "वास्तव धर्म उपदेशता जिनवर वृषभ" सब द्रव्योका स्वरूप 'सत्' दिखलाते हैं और गाथा ९८मे द्रव्यस्वभाव—सिद्ध है और सत् है

ऐसा "श्री जिनोंने तत्वतः कहा है" आगममे (भगवानकी दिव्य-ध्वनिमे भी) उसीप्रकार सिद्ध है और ऐसा नहीं माननेवाला पर समय है ऐसा कहा है ।

श्री प्रवचनसारकी गाथा ९५ मे इसप्रकार है —

अपरित्यक्त स्वभावेनोत्पादव्ययध्रुवत्व सवद्धम् ।
गुणवच्च सपर्याययत्तद्द्रव्यमिति ब्रुवन्ति ॥९५॥

अर्थ —स्वभावको छोडे विना जो उत्पाद—व्यय—ध्रौव्य सयुक्त है तथा गुण युक्त और पर्याय सहित है, उसे 'द्रव्य' कहते है । (अर्थात् सर्वज्ञ कहते हैं) ।

श्री प्रवचनसारकी गाथा ९६ मे भी निम्नप्रकार कहा है —

सद्भावो हि स्वभावो गुणै स्वकपर्ययैश्चित्रै ।
द्रव्यस्य सर्वकालमुत्पादव्ययध्रुवत्वै ॥९६॥

अर्थ —सर्वकालमे गुण तथा अनेक प्रकारकी अपनी पर्यायोसे और उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे द्रव्यका जो अस्तित्व है वह वास्तवमे स्वभाव है ।

श्री प्रवचनसारकी गाथा ९७ मे निम्नलिखित है —

इह विविध लक्षणाना लक्षणमेक सदिति सर्वगतम् ।
उपदिशता खलु धर्मं जिनवरवृषभेण प्रज्ञप्तम् ॥९७॥

अर्थ,—धर्मका वास्तवमे उपदेश करते हुवे जिनवर वृषभने इस विश्वमे विविध लक्षण वाले (भिन्न भिन्न स्वरूपास्तित्व वाले सर्व) द्रव्यो का 'सत्' ऐसा सर्वगत लक्षण एक कहा है —

श्री प्रवचनसारकी गाथा ९८मे निम्नप्रकार कहा है —

द्रव्य स्वभाव सिद्ध सदिति जिनास्तत्वत समाख्यातवन्त ।
सिद्ध तथा आगमतो नेच्छति य स हि पर समय ॥९८॥

अर्थ —द्रव्य स्वभावसे सिद्ध और (स्वभावसे ही) 'सत्' है, ऐसा जिनेन्द्रदेवने यथार्थत कहा है, इसप्रकार आगमसे सिद्ध है, जो इसे नहीं मानता वह वास्तवमें पर समय है ।

२५२–सब गाथाओमे स्पष्टरूपसे कहनेमे आया है कि यह सब सर्वज्ञके ज्ञानमे झलकते हैं, **उसको जो न माने वे पर समय हैं।**

जो वस्तु 'सर्वकाल' अस्तित्वरूप हो वह सर्वज्ञके ज्ञानमे किसप्रकार सर्वकाल मिटकर 'अल्पकाल' हो जावे ? किसप्रकार उसका अनादि-अनन्तरूप मिटकर 'सादि सान्त' हो जावे ? (१) भगवान्का ज्ञान (२) वस्तुका स्वभाव (३) आगम, यह तीनो एक ही प्रकारके होते है, ऐसा '**जिनोत्तमने**' कहा है (देखिये पचास्तिकाय गाथा २–३ तथा उन दोनो आचार्योंकी टीका) वह रहेगा ही नही।

२५३–भगवान् अकलकदेव तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र ९ की टीका 'राजवार्तिक'मे भी कहते हैं कि जो वस्तु वस्तुरूप तत्वत. सर्वकाल (अनादि अनन्त) है, वह अल्पकालीन नही हो सकती है। सर्वज्ञने अनन्तको जान लिया उसका अर्थ वे सान्त होगया ऐसा नही है क्योंकि अनन्त अनन्तरूपसे हो ज्ञात होता है, उसीप्रकार सर्वज्ञने अनादिको जान लिया उसका अर्थ वे सादि होगये ऐसा नही है क्योंकि अनादि अनादिरूपमे ज्ञात होता है। श्री पूज्यपादाचार्य सर्वार्थसिद्धिमे और श्री वीरसेनाचार्य भी श्री धवलमे उसीप्रकार कहते हैं 'छह द्रव्य सदा काल, उसके अनन्तगुणे (सर्वे गुणे) अनादि अनन्त है और उसकी पर्याय भी अनादिसे है और अनन्तकाल तक रहेगी'।

२५४–सर्वज्ञेय अनादिसे अनन्तकाल तक होनेसे अर्थात् सर्वकाल होनेसे उसको परिपूर्ण जाननेवाला सर्वज्ञज्ञान भी अनादि-अनन्त होता है, अनादि अनन्त ज्ञानका धारण करनेवाला सिद्ध भगवान् और केवली भगवान् है वह भी अनादि अनन्त है ऐसा निर्णय करना चाहिए।

२५५–तीर्थंकर भी अनादिसे होनेमे सौ इन्द्र भी अनादिसे हैं और सक्षेपमे साररूप ऐसा समझना चाहिए कि ९ तत्त्व प्रवाहरूपसे अनादि हैं और अनन्तकाल तक रहते हैं अर्थात् सदाकाल हैं, हैं, हैं।

गोम्मटसार जीवकाण्ड

२५६–अब क्रमानुसार स्थिति अधिकारका वर्णन करते हैं।

छद्दव्वावट्ठाण सरिसं तियकाल अत्थपज्जाये।
वेंजणपज्जायेवा, मिलिदे ताण ठिदित्तादो ॥५८१॥
षड् द्रव्यावस्थानं सदृशं त्रिकालार्थ पर्याये।
व्यञ्जन पर्याये वा मिलिते तेषां स्थितित्वात् ॥५८१॥

अर्थः—अवस्थान=स्थिति छह द्रव्योंकी समान है क्योंकि त्रिकाल सम्बन्धी अर्थ पर्याय या व्यंजन पर्यायके मिलनेसे ही उनकी स्थिति होती है।

परसम्बन्धी केवलज्ञानमें स्याद्वादसे व्यवहारनय (अभूतार्थनय) और निश्चयनय (भूतार्थनय) का प्रवर्त्तन

२५७—कितने कहते हैं कि सर्वज्ञ व्यवहारनयसे परको जानते हैं और व्यवहारनय अभूतार्थ है इसलिये भगवान् परको जानते ही नहीं हैं, उस जीवको नय सम्बन्धी सच्चा ज्ञान ही नहीं है। आगम-का कथन अनेकान्त है, भगवानके 'परसम्बन्धी' ज्ञानको दो नय लागू पड़ते हैं अर्थात् एक व्यवहारनय और दूसरा निश्चयनय उससे वे अपरिचित हैं।

२५८—उपरोक्त मान्यतामें निम्न प्रकारका महादूषण आता है:—

(१) व्यवहारनय अभूतार्थ है उसका क्या अर्थ है; वे समझते नहीं है।

(२) छद्मस्थ परको सम्पूर्णपने जानते नहीं हैं और केवली सर्वको व्यवहारनयसे जानते है और दोनो कथनका अन्तर जानते नहीं और एक ही अर्थ समझ लेते हैं।

(३) उनकी मान्यता जैन आचार्योंके अनुसार नहीं है किन्तु बाह्य आचार्योंके अनुसार है।

(४) वे समस्त विश्वके विशेष भावोंको जाननेरूप आत्म-ज्ञानमय सर्वज्ञत्व शक्तिको जानते ही नहीं, इतना ही नहीं किन्तु आत्माकी स्वच्छत्वशक्ति, प्रकाशत्वशक्ति और असंकुचित—विकास-त्वशक्तिको जानते ही नहीं हैं।

(५) वे वीतरागदेव द्वारा कहे हुये आत्माको मानते ही नहीं किन्तु वे अन्यमतीके द्वारा कहे आत्माको मानते है।

(६) उनको परकी कर्त्ताबुद्धि और रागकी कर्त्ताबुद्धि छूटती ही नहीं है।

(७) जैन आचार्य परको कर्त्तापनेकी मान्यताको धारण करने वाले है ऐसी उनकी श्रद्धा होती है।

इनका विवरण निम्न प्रकारसे है :—

(१)

२५९—जिसप्रकार अपने आत्माको तन्मय होकर भगवान् जानते हैं उसी तरह परद्रव्यके साथ तन्मय होकर नहीं जानते, भिन्न स्वरूपसे जानते हैं, इसलिए व्यवहारनय कहा है। जो तन्मयपनेसे जाने तो परकीय रागद्वेष और सुख दुःखका मालिक और कर्त्ताभोक्ता भगवान हो जावे। ज्ञान करने पर भगवानको परद्रव्यका रागी-द्वेषीपना, और सुखी दुःखीपना आजावे यह 'अभूतार्थ' है ऐसा बतानेके लिए 'व्यवहारनय'से भगवान परको जानते है ऐसा कहनेमे आता है। किन्तु वे परके ज्ञानका (—परको जाननेका) अभावसे नही अतः निज और परका ज्ञान तो समानरूपसे होता है; जैसे अपनेको संदेह रहित जानते हैं वैसा ही परको भी जानते हैं इसमें संदेह नहीं है; लेकिन निजस्वरूपसे तन्मय है और परसे तन्मय नहीं है अर्थात परसे तन्मय होना 'अभूतार्थ' है ऐसा बतानेके लिए परका ज्ञान व्यवहारनयसे है ऐसा कहा है।

२६०—परके ज्ञान करने पर भगवान परसम्बन्धी सुखी दुःखीपना और रागी—द्वेषीपना होते हो ऐसा माननेमे महा दूषण आता है। (देखिये श्री परमात्म प्रकाश गाथा ५२ अध्याय १ संस्कृत टीका, श्रीनियमसार गाथा १६६ पृ० ३६६ फुटनोट (श्री परमात्म प्रकाश गाथा ५ संस्कृत टीका)

२६१—आगमका कथन अनेकांत रूप है,—भगवानको परसम्बन्धीका

२६३—प्रश्न कहा ऐसे छद्मस्थ परको जानते नहीं हैं और भगवान परको जानते नहीं हैं ऐसा व्यवहारनयका अर्थ करनेसे केवलपना छूट जाता है और सांख्यपना आजाता है इस विषयमें श्री परमात्मप्रकाश गाथा ५ में लिखा है कि:—

"अब सांख्यमती कहते हैं "जैसे सोनेकी अवस्थामें, सोते हुए पुरुषको बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता, वैसे ही मुक्त जीवोंको बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता है" ऐसे जो सिद्ध दशामें ज्ञानका अभाव मानते हैं, उनके प्रतिबोध करनेके लिए तीन जगत्, तीनकालवर्ती सब पदार्थोंको एक समयमें ही जानता है अर्थात् जिसमें समस्त लोकालोकके जाननेकी शक्ति है, ऐसे ज्ञायकतारूप केवलज्ञानके व्याख्यान करनेके लिए सिद्धोंका ज्ञानमय विशेषण किया,

वे भगवान नित्य हैं, निरंजन हैं और ज्ञानमय हैं, ऐसे सिद्ध परमात्माओंको नमस्कार करके ग्रन्थका व्याख्यान करता हूँ"—

श्री सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें भी कहा है कि कोई अन्यवादी कहते हैं कि सर्वज्ञ पुरुष आत्माको ही जानते हैं इसके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थको नहीं जानते हैं. (अध्याय १ सूत्र २९ पाना २८ श्रुत भण्डार ग्रन्थ प्रकाशन समिति फलटनसे प्रकाशित)

व्यवहारनयका उलटा अर्थ करने पर दूसरा यह दोष आता है कि परका ज्ञान जिसको न हो उसको आत्माका पूर्ण ज्ञान भी नहीं होता है। देखिये श्री प्रवचनसार गाथा ४९ की टीका और उसका भावार्थ, इस भावार्थमें लिखा है "कि ४८ और ४९ वीं गाथामें यह बताया गया है कि जो सबको नहीं जानता वह अपनेको नहीं जानता, और जो अपनेको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता। अपना ज्ञान और सबका ज्ञान एक साथ ही होता है, स्वयं और सर्व इन दोनोंमेंसे एकका ज्ञान हो "और दूसरेका न हो यह असम्भव है" इसलिए जगतमें अल्पज्ञानी और पूर्णज्ञानी ऐसे दो भेद रहते नहीं है। और ऐसा भेद नहीं रहनेसे फिर जीवको अल्पज्ञ किसकी अपेक्षा कहा जावे ? श्री पंचास्तिकाय गाथा ८ के अनुसार सर्व भावोंके 'सप्रतिपक्ष' होते ही है और अल्पज्ञानीको सम्पूर्ण ज्ञानी ऐसा प्रतिपक्ष नहीं रहने पर अल्पज्ञानीका भी अभाव हो जायेगा तो जगतमें कोई जीव नहीं रहेगा, ज्ञान गुण भी नहीं रहेगा।

छद्मस्थ और केवली दोनोंके परके ज्ञानका अभाव हो जायगा। कैसी विचित्रता ? केवलीके परका परिज्ञान परिपूर्ण है—किन्तु परके साथ तन्मयता या एकता बुद्धि नहीं है। कोई सर्वज्ञ न हो तो अन्य अनन्त जीव उससे अनन्तानन्त गुने पुद्गल, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, एक आकाश और असंख्यात कालाणु जिसका विवेचन चारों अनुयोगोंमें आता है, वह किसने देखा है ? वह तो मन पर है

और परका ज्ञान सर्वज्ञको होना नही है। ऐसी मान्यताका परिणाम यह हुआ कि सर्व जैन आगम कल्पना मात्र हुआ और सर्वज्ञका वचन नहीं रहा।

(३)

२६४–इसका स्पष्टीकरण नम्बर दोमे कर दिया गया है। ऐसी झूठी मान्यतावाला जैन नही रहा सांख्य होगया। सांख्य कहते हैं कि, केवली परको जानते नही हैं।

(४)

२६५–आत्माकी शक्तियाँ सर्वज्ञशक्ति, स्वच्छत्वशक्ति, प्रकाशत्वशक्ति, असंकुचित विकासत्व शक्तियोंकी व्याख्या निम्न प्रकार है .—

सर्वज्ञत्वशक्तिः—"समस्त विश्वके विशेषभावोको जाननेरूपसे परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्व शक्ति"।

नोट—'आत्मज्ञानमय' शब्द बडा उपयोगी है।

स्वच्छत्वशक्ति

"अमूर्तिक आत्मप्रदेशोमे प्रकाशमान लोकालोकके आकारोंसे मेचक (अर्थात् अनेक आकाररूप) ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसी स्वच्छत्वशक्ति (जैसे दर्पणकी स्वच्छत्वशक्तिसे उसकी पर्यायमे घटपटादि प्रकाशित होते हैं, उसीप्रकार आत्माकी स्वच्छत्वशक्तिसे उसके उपयोगमे लोकालोकके आकार प्रकाशित होते हैं)"

नोट—'लोकालोकके आकार प्रकाशित' यह शब्द बडा उपयोगी है।

प्रकाशत्वशक्ति

"स्वय प्रकाशमान विशद (स्पष्ट) ऐसी स्वसवेदनमयी (स्वानुभवमयी) प्रकाशत्वशक्ति"।

असंकुचित विकासत्वशक्ति

"क्षेत्र और कालसे अमर्यादित ऐसी चिद्विलास स्वरूप (चैतन्यके विलास स्वरूप) असकुचित—विकासत्व शक्ति" छद्मस्थकी चित्शक्ति

संकुचित व्यापारवाली होती है और भगवानकी असंकुचित विकासको प्राप्त है इसलिए वह ज्ञेयभूत विश्वके सर्व देशोंमें युगपद् व्यापार करती होनेसे कथंचित् कूटस्थ होकर, अन्य विषयको प्राप्त न होनेसे विवर्तन नहीं करती। वह यह वास्तवमें निश्चित (नियत, अचल) सर्वज्ञपनेकी और सर्वदर्शीपनेकी उपलब्धि है। (देखिये श्री पंचास्तिकाय गाथा २८की टीका) इसलिए भगवान परको नहीं जानते हैं ऐसा माननेवालोंने आत्माकी शक्तियोंका इन्कार किया है।

(५)

२६६—वीतरागदेव द्वारा कहे गये प्रत्येक आत्मा असंख्यात प्रदेशी और सर्वज्ञशक्तिमय हैं ऐसे आत्माको वह मानते ही नहीं है किन्तु बौद्ध, नैयायिक और सांख्यसे कहे हुवे 'आत्मा'को वे मानते हैं। (देखिये श्री प्रवचनसार गाथा ४१ श्री जयसेनाचार्यकी टीकाका अन्तिम भाग तथा श्री परमात्म प्रकाश गाथा १ की संस्कृत टीका)।

(६)

२६७—जबतक भगवानके द्वारा कहे हुवे आत्माको नहीं माने तबतक उसका झुकाव निमित्त तरफसे हटकर आत्माके सम्मुख हो सकता नहीं है; इसलिए उसको परकी कर्त्ता बुद्धि, रागकी कर्त्ता बुद्धि और परसे लाभ-नुकसानकी बुद्धि कभी छूटेगी नहीं और वह सदाकाल पर समय ही रहेगा।

(७)

२६८—श्री समयसारके कर्ताकर्म अधिकारमें तथा सर्व विशुद्धज्ञान अधिकारमें जीवको परका कर्त्ता मानना यह महान् अज्ञानमय अंधकार है ऐसा कहा है।

श्री समयसारके कलश ५५ में कहा है कि —

"इस जगतमें मोही (अज्ञानी) जीवोंका 'परद्रव्यको मैं करता हूँ' "ऐसा परद्रव्यके कर्तृत्वका महा अहंकाररूप अज्ञानांधकार जो

अत्यन्त दुर्निवार है वह अनादि संसारसे चला आ रहा है × × ×"

श्री जयसेनाचार्य श्री समयसारकी ८६ गाथामे कहते हैं कि.— शुभाशुभ कर्म मैं करता हूँ ऐसा महान् अहंकाररूप अन्धकार मिथ्याज्ञानियोंके नष्ट होता नहीं है" ।

श्री समयसार गाथा ३०८ से ३११ के शीर्षकमे आचार्यदेव "आत्माका अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं" और टीकाके अन्तमे कहा है कि "जीवके अजीवका कर्तृत्व सिद्ध नही होता। इसलिए जीव अकर्त्ता सिद्ध होता है"।

व्यवहारसे भगवान् परको जानते हैं उसका अर्थ कोई ऐसा करे कि व्यवहार अभूतार्थ है अत भगवान परको जानते ही नही हैं तो उसको श्री जैनाचार्योकी श्रद्धा ही नही है। आचार्योके आगमका अर्थ करनेकी पद्धति वे जानते ही नही हैं—और उसे सर्वज्ञकी—मोक्ष-तत्त्वकी भी श्रद्धा नही है ।

छः द्रव्योंकी संख्या

२६९—जिसप्रकार छ द्रव्य सर्वकाल हैं अर्थात् अनादि अनन्त स्वभाव-सिद्ध हैं उसीप्रकार उसकी सख्या भी निश्चित् है। सव द्रव्य अनादि अनन्त होनेसे उसकी सख्या सर्वकाल एक ही प्रकार रहती है उसमे कुछ कम-ज्यादा नही होती है अर्थात् घटना-बढना नही होता है इसलिए उसकी सख्या सर्वकाल निश्चित ही रहती है। वह सख्या भी श्री गोम्मटसार जीवकाडकी गाथा ५८८ मे आई है निम्नप्रकार है.—आकाश एक, धर्मास्तिकाय एक, काल द्रव्यके लोक प्रमाण असख्यात, जीव अनन्त और पुद्गल उससे अनन्त गुणा है ।

जीवकी अनन्त सख्या कितनी है वह श्री त्रिलोकसारकी गाथा ६९ मे आया है सख्या दो प्रकारकी होती है (१) मर्यादित (२) अमर्यादित—इसका स्पष्टीकरण श्री त्रिलोकसारमे विस्तारसे कहा है वहाँसे पढ लेना चाहिये ।

लोक अनादिनिधन

२७०–यह लोक अनादि-अनन्त है इसको किसी भी पुरुषने बनाया नही, कोई भी इसका नाश कर सकता नही, किसीने इसको धारण किया नही और कोई भी इसकी रक्षा करता नही है। इस लोकमे जो जीवादि पदार्थ हैं वह भिन्न–भिन्न अनादिनिधन हैं। उसकी अवस्थाका बदलना हर समय हुआ ही करता है—इस अपेक्षामे उसको उत्पाद–व्यय कहते हैं। स्वर्ग, नरक, द्वीपादिक है वे अनादिसे इसीप्रकार हैं और सदाकाल ऐसे ही रहेगे। जीवादिक या स्वर्गादिक स्वयसिद्ध हैं ससारमे जीव है उसीप्रकार यथार्थ ज्ञान द्वारा मोक्षमार्गरूपी साधनसे, सर्वज्ञ–वीतराग होते हैं, तब उनको परमब्रह्म कहनेमे आता है इस जगतका कोई भिन्न कर्त्ता परमब्रह्म नही। (देखिये श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय ५ पृष्ट १६० हिन्दी देहली प्रकाशित) उसमे ऐसा भी कहा है कि **'अनादिसे जो प्राप्त है वहाँ तर्क क्या ?'**

२७१–प्रश्न—इस असख्यात प्रदेशी लोकाकाशमे अनन्त जीव रहते हैं, उससे अनन्त गुणा पुद्गल रहते है, लोकाकाशके असख्य प्रदेशोके बराबर असख्यात कालाणु रहते हैं, तथा पूरे लोकाकाशमे धर्म और अधर्म भी व्याप्त हैं तो इस छोटे प्रमाणवाले लोकाकाशमे इतने अनन्त द्रव्य किसप्रकार रह सकते हैं ?

उत्तर—(१) जिसप्रकार एक दीपकके प्रकाशमे अनेक दीपकोका प्रकाश समा जाता है, (२) जिसप्रकार तेजाब विशेषसे भरे हुए शीशेके पात्रमे बहुतसा सोना अवकाश पाता है (३) जिसप्रकार दूधके भरे हुवे घडेमे उसके प्रमाणमे राख (भस्म) और सुईयाँ बराबर समा जाती हैं उसीप्रकार आकाशद्रव्यकी विशिष्ट अवकाशदान शक्तिसे ऊपर कहे हुवे अनन्त द्रव्य भी लोकाकाशमे समा जाते हैं, और उनके रहनेमे किसी भी प्रकारसे कठिनाई आती नही।

इसलिए नित्य हैं, नित्यका लक्षण आगेके सूत्रमे तद्भावाव्यय नित्य ऐसा कहेगे और यह द्रव्य इतने ही हैं ऐसी संख्याको नहीं छोड़ते हैं, इसलिये अवस्थित कहते हैं, धर्मादिक छह द्रव्य हैं ऐसी संख्याको नहीं उल्लंघन करते हैं यहाँ भी सामान्य विशेषणलक्षणरूप द्रव्यार्थिकनय लगाना और जिनके रूप विद्यमान नही है उनको अरूपी कहिये यहाँ रूपके निषेधसे उसके सहचारी जो रस, गन्ध, स्पर्श उनका निषेध जानना इससे यह द्रव्य अरूपी कहिये अमूर्तिक है।

यहाँ प्रश्न—जो नित्य और अवस्थित इन शब्दोका अर्थका विशेष नही जाने। तहाँ कहते है—जो द्रव्यविषें अनेक धर्म हैं वे द्रव्यपणासे सदा विद्यमान हैं, इसलिए यह तो नित्य शब्दका अर्थ है। और द्रव्यविषें विशेष लक्षण हैं उसको कभी भी छोडते नहीं हैं चेतनसे अचेतन होता नहीं है—अमूर्तिकसे मूर्तिक होता नहीं है, इसलिए द्रव्योंके संख्याकी व्यवस्था है यह व्यवस्थितका अर्थ है" देखिये श्री सर्वार्थ सिद्धि वचनिका टीका अध्याय ५ पृष्ठ २०८।

प्रश्न २

२७३–प्रश्न—२, [अ] सर्वज्ञ समस्त द्रव्योके आदि और अन्तको जानते हैं या नही ?

[ब] समस्त जीवोकी सख्या जानता है या नही ?

[क] यदि जानता है तो अनादि अनन्त, अनन्तानन्त आदि शब्दोका क्या अर्थ है ?

[ड] और वह सर्वज्ञकी अपेक्षा है या अल्पज्ञकी अपेक्षा ?

२७४–उत्तर—(१) यह प्रश्न गणितका और लोकरचनाका होनेसे करणानुयोगका विषय है। "जो उपदेशको जीव यथावत् न पहिचाने तो वह अन्यथा मानकर विपरीत प्रवर्तन करता है" (मोक्षमार्ग

प्रकाशक अ० ८ पृ० ३०३) इसलिये उसका स्वरूप संक्षेपमें दिया जाता है। वह स्वरूप निम्नप्रकार है,—"छद्मस्थका उपयोग निरन्तर एकाग्र नहीं रहता है, इसलिये ज्ञानी पुरुष करणानुयोगके अभ्यासमे अपने उपयोगको लगाते हैं, जिससे केवलज्ञान द्वारा जाने गये पदार्थोंका जानपना उसको होता है, भेद यहाँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्षका ही है, परन्तु भासनेमें विरुद्धता नहीं है।" (देहली—मोक्षमार्ग प्रकाशक अध्याय ८, पृ० ३९६)

(२) जो जीव सर्वज्ञको नही मानते हैं और सर्वज्ञके माननेका दावा करनेपर सर्वज्ञके स्वरूपसे अज्ञात हैं ऐसे सभी जीव अनादिसे ऐसा कुतर्क उठाते रहते हैं और ज्ञानी पुरुष उनकी अज्ञानता टालनेके लिए आगममे समाधान करते रहते हैं। भगवान अकलंकदेव मुनीन्द्र जो तर्कसमलके सूर्यके रूपमे प्रसिद्ध हैं वे ऐसे (प्रश्नकार जैसा) कुतर्कवादिओंका तर्क किसप्रकार मिथ्या है यह तत्त्वार्थ राजवार्तिकमे बड़े विस्तारसे कहते हैं वह निम्नप्रकार है।

देखो—पंडित मक्खनलालजीका अनुवाद तत्त्वार्थ राजवार्तिक अध्याय ५ वाँ, सूत्र ८, वार्तिक–२, पृ० १०४ मे, "तदनुपलब्धेरसर्वज्ञत्व प्रसंग इति चेन्न, तेनात्मनाऽवसितत्त्वात् ॥२॥

(३) "धर्म, अधर्म और आकाशके प्रदेशोंकी संख्या नही की जा सकती इसलिए वे असंख्येय हैं। यदि असंख्येय शब्दका अर्थ यह किया जायगा तब फिर सर्वज्ञ भी उनको नहीं जान सकता इसलिये धर्म आदिके जाने बिना समस्त पदार्थोंका ज्ञान न होनेके कारण-सर्वज्ञपना नही सिद्ध हो सकता ? सो ठीक नहीं। जो पदार्थ जिस रूपमे विद्यमान हो उसे उसी रूपमे जानना सर्वज्ञका सर्वज्ञपना कहा जाता है, जिसतरह आकाश प्रदेशोंकी अपेक्षा अनंत है और सर्वज्ञ उसे अनंतरूपमे ही जानता है, तथापि उसके सर्वज्ञपना नाश नही होता; उसीप्रकार असंख्येय है उसे असंख्येयरूपमे जानने

पर कभी सर्वज्ञपनेकी हानि नही हो सकती क्योकि जो पदार्थ जिस-रूपसे अवस्थित है उसे उसीरूपसे सर्वज्ञ यथार्थज्ञ होनेके कारण जानता है इसलिये पदार्थ दूसरेरूपसे स्थित हों, और जाने दूसरे-रूपसे, वह सर्वज्ञ नहीं कहा जा सकता; इस रीतिसे यह बात सिद्ध हुई कि प्रदेशोकी अपेक्षा धर्म, अधर्म आदि असख्येय पदार्थोंको असख्येयरूपसे जाननेपर भी सर्वज्ञका सर्वज्ञपन नष्ट नही हो सकता।"

(४) तथा सूत्र ६ का वार्तिक तीसरेमे पृ० ११०मे लिखा है कि "अनन्तत्वादपरिज्ञानमिति चेन्नातिशयज्ञानदृष्टत्वात्" ॥ ३ ॥ "जो पदार्थ अनन्त है उसका सर्वज्ञके ज्ञान द्वारा परिच्छिन्न अर्थात् प्रमाण किया जा सकता है या अपरिच्छिन्न अर्थात् नहीं प्रमाण किया जा सकता है? यदि कहा जायगा कि वह सर्वज्ञके ज्ञानसे परिच्छिन्न है तब उसका अंत सिद्ध होगया। इसलिये अनन्तस्वरूप पदार्थका अनन्तपना नहीं बनता; यदि कहा जायगा कि वह सर्वज्ञ-के ज्ञानसे परिच्छिन्न नही है तब उसका अखण्डतासे स्वरूप न जाननेके कारण सर्वज्ञको असर्वज्ञ कहना होगा। इस रीतिसे अनन्त पदार्थका ज्ञान न होनेके कारण कोई भी पदार्थ अनन्त नही माना जा सकता? सो ठीक नही।

सर्वज्ञका और श्रुतज्ञानीका ज्ञान समान है

केवली भगवानके जो क्षायिक ज्ञान होता है वह अतिशयवान और अनन्तानन्त परिमाणवाला होता है, इसलिये जब यह अनंता-नन्त परिमाणवाला है तब वह अनंतस्वरूप पदार्थको स्पष्ट-रूपसे जान सकता है तथा अतिशय ज्ञानके धारक सर्वज्ञके उपदेश-से अन्य लोक भी अनंतस्वरूप पदार्थको अनुमानके द्वारा जान सकते हैं इसलिये सर्वज्ञपनेकी हानि नहीं हो सकती।

परिछिन्नका अर्थ सांत करनेसे अनन्तपनेका अभाव नहीं होता है।

यदि यहाँ पर यह कहा जाय कि परिछिन्नका अर्थ सांत है। जो पदार्थ सर्वज्ञके ज्ञानसे परिछिन्न हो चुका वह सांत ही कहा जायगा, अनन्त नहीं कहा जा सकता इसलिये आकाशको जो सर्वज्ञके ज्ञानसे परिछिन्न होनेसे भी अनन्त माना है वह मिथ्या है ? सो भी ठीक नहीं। जो पदार्थ अनन्त है वह अनन्तस्वरूपसे ही सर्वज्ञके ज्ञानमें झलकता है अर्थात् वे अनन्तको अनन्तस्वरूपसे ही जानते हैं इसलिये अनन्त पदार्थ परिछिन्न होनेसे सांत नहीं कहा जा सकता।"

(५) तथा राजवार्तिक सूत्र ६का वार्तिक ४ पृ० १२१मे लिखा है कि "सर्वेषामविप्रतिपत्ते ॥४॥

"सिर्फ जैन सिद्धान्तकार ही आकाश आदि पदार्थोको अनन्त-स्वरूप नहीं मानते और दूसरे अनेक सिद्धान्तकारोने भी पदार्थ अनन्तस्वरूप मान रक्खे हैं इसलिए अनन्त पदार्थ भी सर्वज्ञके ज्ञान द्वारा जाने जाते है अर्थात् वे ज्ञानमें सान्त होनेपर भी अनंत ही रहते हैं। और सर्वज्ञकी सर्वज्ञतामें भी कोई हानि नहीं आती, जिस तरह कोई कोई अर्थात् चार्वाक लोग मानते हैं कि लोक धातु अर्थात् लोकके कारणस्वरूप पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चार धातुएँ अनन्त हैं। नैयायिक और वैशेषिकोका कहना है कि दिशा, काल, आत्मा और आकाश ये सर्वत्र व्यापक हैं इसलिए अनन्त है। सांख्य सिद्धातकारोका कहना है कि प्रकृति और पुरुष दोनो पदार्थ सर्वत्र व्यापक है, इसलिये वे अनन्त हैं। इसतरह यदि अनत-स्वरूप पदार्थको माननेवालोपर आक्षेप किया जायेगा तो जैन सिद्धान्तपर ही नही किन्तु अन्य सिद्धान्तोपर भी आक्षेप किया

जायगा। यहाँपर यह बात अच्छी तरहसे समझ लेनी चाहिये कि जिन उपर्युक्त सिद्धांतकारोंने लोकधातु आदि पदार्थ अनन्त माने हैं वे यह स्वीकार नहीं करते कि पदार्थोंको अनन्त माने जाने पर कहीं भी अन्त न मिलनेके कारण उनका ज्ञान नहीं होगा।

सांतका अर्थ और ऐसा करनेका कारण

अथवा दिव्य ज्ञानियोंके ज्ञानसे उनका ज्ञान होता है इसलिये वे अन्तसहित अर्थात् सांत हैं किन्तु अनन्त मानकर भी वे उनका दिव्य ज्ञानके द्वारा पूर्णरूपसे प्रत्यक्ष मानते हैं इसलिये ऊपर जो आकाशके अनन्तस्वरूपपर जैन सिद्धांतकारके ऊपर यह कटाक्ष किया गया था कि यदि किसी पदार्थको अनन्तस्वरूप माना जायगा तो उसके अंतका निश्चय न होनेसे उसका ज्ञान न हो सकेगा वह अयुक्त है।"

तथा यह भी बात है कि—

इसी अध्यायके इसी सूत्रके वार्तिक ५ मे लिखा है कि सर्वज्ञाभावप्रसंगाच्च ॥५॥

ज्ञेयपदार्थ अनंत नहीं सांत है यह मान्यता झूठ है

"जो वादी यह मानता है कि अनन्तपना ज्ञानके अभावमें कारण है अर्थात् जो जो अनन्तस्वरूप पदार्थ होगा उसका अखंडरूपसे ज्ञान न हो सकेगा, उसके मतमें सर्वज्ञ पदार्थ सिद्ध न हो सकेगा क्योंकि ज्ञेय-ज्ञानके विषयभूत पदार्थोंको अनंत माना गया है इसलिये अनन्त होनेके कारण उनका कोई भी जाननेवाला सिद्ध न होगा। यदि यह कहा जायगा कि ज्ञेय पदार्थ अनन्त नहीं सान्त है तो उनका अन्त रहनेसे संसारका अभाव होगा तथा संसारके अभावमें मोक्षका भी अभाव होगा।

खुलासा तात्पर्य इसप्रकार है—

समस्त ज्ञेय पदार्थोंमे यदि जीवोंको सान्त अर्थात् अन्त सहित

माना जायगा तो एक न एक दिन सबका मोक्ष हो जानेपर संसारका अभाव हो जायगा। यदि यहाँपर यह माना जाय कि जो जीव मोक्ष जाते हैं वे वहाँसे लौटकर फिर ससारमे आजाते है, फिर ससारसे मोक्ष जाते है, फिर वहाँसे लौटकर ससारमे आजाते हैं इसरूपसे ससारका कभी भी नाश नही हो सकता ? सो ठीक नही। यदि मोक्षमें गये हुये जीवोंका लौटना माना जायगा तो फिर उनकी मोक्ष अवस्था ही न बन सकेगी, क्योंकि सभी सिद्धान्तकारोंने आत्यन्तिक अवस्थाका नाम मोक्ष माना है। आत्यन्तिक अवस्थाका अर्थ यह है कि उसके बाद फिर जीवकी कोई सांसारिक अवस्था नहीं होती। यदि मोक्षके बाद फिर ससारमे आना पडा तो मोक्ष आत्यन्तिक अवस्था नही ठहर सकती, इसलिये मोक्ष जाकर फिर लौट आना माननेपर जीवोको मोक्ष नही सिद्ध हो सकता।

सांतका विशेष स्पष्टीकरण

तथा एक एक जीवमे कर्म-नोकर्म आदि स्वरूपसे अनंत पुद्गलोंकी स्थिति मानी है, यदि इन पुद्गलोंको सांत माना जायगा तो उनका जो कर्मस्वरूप वा नोकर्मस्वरूप भेद है वह न बन सकेगा क्योंकि कर्म नोकर्मस्वरूप परिणत होते होते उनका अंत ही हो जायेगा अर्थात् जितने परमाणु हैं वे सभी कर्म-नोकर्म बनकर समाप्त हो जायेंगे, कर्म-नोकर्मका नाम ही संसार है। यदि कर्म-नोकर्मरूप पदार्थोंकी सिद्धि न होगी तो संसारका ही अभाव हो जायगा। संसारकी विद्यमानतामें मोक्षकी सत्ता मानी गयी है जब संसारका ही अभाव हो जायगा तब मोक्ष पदार्थकी भी सिद्धि न हो सकेगी।

सर्वज्ञ समस्त द्रव्योंके आदि और अंतको जानता है या नहीं ? उसकी स्पष्टता

तथा जब सब ही ज्ञेय पदार्थ अन्तवान—अन्त सहित हैं तब अतीतकाल और भविष्यत् कालका भी अन्त मानना होगा इस तरह अतीत कालके और भविष्यत् कालके पहिले और पीछे काल-का व्यवहार भी न हो सकेगा, क्योंकि जब उनका अन्त है तब उनकी आदि भी अवश्य माननी पड़ेगी। इसलिये जहाँसे अतीत कालका प्रारम्भ हुआ है उसके पहिले एवं जहाँ भविष्यकालका अन्त हुआ है उसके पीछे किस पदार्थको कालके नामसे पुकारा जायगा ? यदि कहा जायगा कि वहांपर नवीन कालद्रव्यकी उत्पत्ति मान लेंगे इसलिये कालका व्यवहार बाधित नहीं हो सकेगा, सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जो पदार्थ असत्—अविद्यमान है उसकी तो सर्वथा उत्पत्ति नहीं हो सकती और जो पदार्थ सत्—विद्यमान है उसका सर्वथा अभाव नहीं हो सकता यह सिद्धान्त-सिद्ध बात है। जब भूत और भविष्यत् कालके आदि और अन्तमें काल पदार्थ विद्यमान ही नहीं तब उसकी कभी भी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। तथा—यदि आकाशको सांत पदार्थ माना जायेगा तब जहाँतक आकाश है वहाँतक तो वह है ही। किन्तु जहाँ जाकर उसका अन्त होगा उसके बाद किसी ठोस पदार्थकी मौजूदगी माननी पड़ेगी। यदि कहा जायेगा जहाँ आकाशका अंत है उसके आगे कोई ठोस पदार्थ नहीं है तब वहाँ आकाश ही मानना पड़ेगा। इसलिये यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि आकाशका अन्त नहीं, वह अनन्तस्वरूप ही पदार्थ है। जब यह बात अनेक युक्तियोंसे सिद्ध हो चुकी है कि अनन्तस्वरूप

भी पदार्थका सर्वज्ञके ज्ञानसे प्रत्यक्ष होता है तब अनन्त होनेसे उसका परिज्ञान नहीं होगा अथवा यदि परिज्ञान होगा तो वह सांत कहना पडेगा इस तरह जो ऊपर कुतर्क उठाई गई थी वह सब मिथ्या है।"

२७५—ऊपरके आधारमे दूसरे प्रश्नका अ, ब, क का जवाब स्पष्ट आजाता है।

२७६–प्रश्न—ड—और वह सर्वज्ञकी अपेक्षा है या अल्पज्ञकी अपेक्षा?

उत्तर—इस प्रश्नसे मालूम पडता है कि अल्पज्ञका सम्यक् श्रुतज्ञान और सर्वज्ञके ज्ञानमे वस्तुका स्वरूप बडा विरुद्ध है ऐसा प्रश्नकार मानते हैं। किन्तु वस्तुस्वरूप ऐसा है कि छ द्रव्य आगमकी अपेक्षा, वस्तुस्वरूपकी अपेक्षा, श्रुतज्ञानकी अपेक्षा अनादि अनन्त है। और केवलज्ञानकी अपेक्षा भी ऐसा है।

देखिये श्री प्रवचनसार गाथा ९८ की टीका पृ० १२२ मे लिखा है कि "वास्तवमें द्रव्योंसे द्रव्यांतरोंकी उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि सर्व द्रव्य स्वभाव–सिद्ध हैं। (उनकी) स्वभाव-सिद्धता तो उनकी अनादि निधनतासे है।"

२७७—श्री प्रवचनसार गाथा ४९ की (जयसेनाचार्य कृत) सस्कृत टीका पृ० ६५ मे और उसकी भाषा टीका नीचे अनुसार है।

"यदि ऐसा है तो जब छद्मस्थोको सर्वका ज्ञान नही है तब उनको आत्माका ज्ञान कैसे होगा? यदि उनको आत्माका ज्ञान न होगा तो उनके आत्माकी भावना कैसे होगी? यदि आत्माकी भावना न होगी तो उनको केवलज्ञानकी उत्पत्ति नही होगी? ऐसा होनेसे कोई केवलज्ञानी नही होगा। इस शंकाका समाधान करते हैं कि परोक्ष प्रमाणरूप श्रुतज्ञानसे सर्व पदार्थ जाने जाते हैं यह कैसे? सो कहते हैं कि छद्मस्थोंको भी लोक और अलोकका ज्ञान व्याप्ति ज्ञानरूपसे है। वह व्याप्ति ज्ञान परोक्ष-रूपसे केवलज्ञानके विषयको ग्रहण करनेवाला है।"

ऐसा ही अभिप्राय भगवान श्री समन्तभद्राचार्यका आप्तमीमांसा नामक दर्शन शास्त्र सूत्र १०५ मे निम्नप्रकार आया है।

स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्व तत्त्वे प्रकाशने ।
भेद मक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम् भवेत् ॥ अष्टमहस्री दशम परिच्छेद १०५

अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान और केवलज्ञान यह दोनों सर्व तत्त्वोंको प्रकाश करनेवाले हैं, भेद इतना ही है कि केवलज्ञान प्रत्यक्ष है और श्रुतज्ञान परोक्ष है। वस्तुरूपसे यह दोनों एक दूसरेसे अन्यरूप नहीं हैं।

इस विषयमे प० टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठीमे सस्ती ग्रथ-मालाका हिन्दी मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ५१२ मे आया है।

२७८—श्रीप्रवचनसार जयसेनाचार्य कृत हिन्दी टीका भाग ३ गाथा ५५ की टीका पृ० २०२ मे भी ऊपरके अनुसार नीचेके शब्दोमे लिखा है कि "विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावधारी परमात्मपदार्थको लेकर सर्व ही पदार्थ तथा उनके सर्व गुण और पर्याय परमागमके द्वारा जाने जाते हैं, क्योकि श्रुतज्ञानरूप आगम केवलज्ञानके समान है। आगम द्वारा पदार्थोंका ज्ञान होनेपर जब स्वसवेदन ज्ञान या स्वात्मानुभव पैदा हो जाता है तब उस स्वसवेदनके बलसे जब केवलज्ञान पैदा होता है तब वे ही सर्व पदार्थ प्रत्यक्ष होजाते हैं। इसकारणसे आगम-के चक्षुसे परम्परा सर्वज्ञ ही दिख जाता है। इसी गाथाके भावार्थ-में कहा है कि—जैसे केवलज्ञानी सर्व पदार्थोंको जानते है वैसे श्रुत-ज्ञानी सर्व पदार्थोंको जानते हैं। केवल अन्तर यह है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है, केवलज्ञान प्रत्यक्ष है।

२७९—श्री प्रवचनसार गाथा २३२ की टीकामे श्री अमृतचन्द्राचार्यजीने इस विषयको पृ० २८४ मे नीचेके शब्दोमे स्पष्ट किया है कि, "वास्तवमे आगमके विना पदार्थोंका निश्चय नही किया जा सकता; क्योकि आगम ही जिसके त्रिकाल (उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप) तीन लक्षण प्रवर्तते है ऐसे सकल पदार्थ सार्थके यथातथ्य ज्ञान

द्वारा सुस्थित अन्तरगसे गम्भीर है (अर्थात् आगमका ही अन्तरग, सर्व पदार्थोंके समूहके यथार्थ ज्ञानद्वारा सुस्थित है इसलिये आगम ही समस्त पदार्थोंके यथार्थ ज्ञानसे गम्भीर है ।)

२८०—तथा गाथा २३४ पृ० २८८ मे लिखा है कि, अब उस (सर्वत-चक्षुत्व)की सिद्धिके लिये भगवन्त श्रमण आगमचक्षु होते है । यद्यपि ज्ञेय और ज्ञानका पारस्परिक मिलन हो जानेसे उन्हे भिन्न करना अशक्य है (अर्थात् ज्ञेय ज्ञानमें ज्ञात न हो ऐसा करना अशक्य है) तथापि, वे उस आगम चक्षुसे स्व—परका विभाग करके, जिनने महा मोहको भेद डाला है ऐसे वतते हुए, परमात्माको पाकर, सतत् ज्ञान-निष्ठ ही रहते है । तथा गाथा २३५ पृ० २८९ मे लिखा है कि, प्रथम तो, आगम द्वारा सभी द्रव्य प्रमेय (ज्ञेय) होते है; क्योंकि सर्व द्रव्य विस्पष्ट तर्कणासे अविरुद्ध है. (सब द्रव्य आगमानुसार जो विशेष स्पष्ट तर्क उसके साथ मेल वाले है अर्थात् वे आगमानुसार विस्पष्ट विचारसे ज्ञात हो ऐसे है) और फिर आगमसे वे द्रव्य विचित्र गुणपर्यायवाले प्रतीत होते है, क्योकि आगमको सहप्रवृत्त और क्रमप्रवृत्त अनेक धर्मोमे व्यापक (अनेक धर्मोंको कहनेवाला) अनेकान्तमय होनेसे प्रमाणताकी उपपत्ति है (अर्थात् आगम प्रमाणभूत सिद्ध होता है) इससे सभी पदार्थ आगमसिद्ध ही है । और वे श्रमणोको स्वयमेव ज्ञेयभूत होते है, क्योकि श्रमण विचित्र गुणपर्यायवाले सर्व द्रव्योमे व्यापक (सर्व द्रव्योको जाननेवाले) अनेकान्तात्मक श्रुतज्ञानोपयोगरूप होकर परिणमित होते हैं । इससे (यह कहा है कि) आगम चक्षुओंको (आगमरूप चक्षु-वालोंको) कुछ भी अदृश्य नहीं है ।

श्री समयसार कलश २के भावार्थ पृ० ३मे लिखा है कि 'सम्यग्-ज्ञान ही सरस्वतीकी सत्यार्थ मूर्ति है । उसमे भी सम्पूर्ण ज्ञान तो

केवलज्ञान है, जिसमें समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष भासित होता है। वह अनन्त धर्म सहित आत्मतत्त्वको प्रत्यक्ष देखता है, इसलिए वह सरस्वतीकी मूर्ति है, और—

केवलज्ञानके अनुसार श्रुतज्ञान है

उसीके अनुसार जो श्रुतज्ञान है वह आत्मतत्त्वको परोक्ष देखता है, इसलिये वह भी सरस्वतीकी मूर्ति है। और द्रव्य श्रुत वचनरूप है, वह भी उसकी मूर्ति है, क्योंकि वह वचनोंके द्वारा अनेक धर्मवाले आत्माको बतलाती है, इसप्रकार समस्त पदार्थोंके तत्त्वको बताने वाली ज्ञानरूप तथा वचनरूप अनेकान्तमयी सरस्वतीकी मूर्ति है।

२८१–प्रश्न—२ [उ] से पढ़नेसे मालूम होता है कि सर्वज्ञकी अपेक्षा वस्तुका स्वरूप एक प्रकारका है और अन्यज्ञकी अपेक्षा दूसरे प्रकारका है ऐसा प्रश्नकारका कहना है किन्तु यह मिथ्या है–ऐसा सिद्ध हुआ, और—

२८२–प्रश्न—२ [अ] से समस्त द्रव्योंके आदि अन्त हैं ऐसा सर्वज्ञ देखते हैं और उनका (समस्त द्रव्योंका) आदि अन्त न हो तो वह सर्वज्ञ नहीं होगा ऐसा प्रश्नकार कहना चाहते हैं, यह मान्यता झूठ है ऐसा भी सिद्ध हुआ।

२८३–प्रश्न—२ [ब] से मालूम पड़ता है कि भगवान सर्वज्ञ समस्त जीवादि की संख्याको नहीं जानता क्योंकि उसके ज्ञानमें प्रदेशों-की संख्या नहीं की जा सकती अथवा संख्या कहनेसे उसका अंत सिद्ध होगया इसलिये अनन्त स्वरूप पदार्थका अनन्तपना नहीं बन सकता ऐसी प्रश्नकारकी मान्यताएँ वे सब झूठी हैं, ऐसा भगवान अकलंकदेवका जो कथन ऊपर कहनेमें आया है इससे बिलकुल स्पष्ट है, इस विषयमें अन्तका अर्थ "परिपूर्णरूपसे" ऐसा होता है। श्री प्रवचनसारमें जयसेनाचार्यने गाथा १५ की

टीका पृ० १६ मे 'अन्त' शब्दकी स्पष्टता निम्न शब्दोंमे की है कि—
"सजगत्त्रय-कालत्रयवर्ती समस्त वस्तु गतानन्त धर्माणां युगपत्प्रकाशकं केवलज्ञानं प्राप्नोति ततः स्थितं शुद्धोपयोगात्सर्वज्ञो भवतीति"

२८४—देखिये यहां 'अन्त' शब्दका अर्थ वस्तुके अनन्त धर्मोंका एक साथ जानना ऐसा करनेमें आया है, परन्तु अनन्त धर्मोंका 'अन्त' रूपसे देखना ऐसा नहीं है। यदि ऐसा अर्थ करनेमे आवे तो वह ज्ञान केवलज्ञान न रहकर मिथ्याज्ञान हो जावेगा।

प्रश्नकार अंत'का अर्थ सख्या अपेक्षासे और काल अपेक्षासे अन्त' ऐसा करना चाहते है परन्तु 'अन्त'का अर्थ यह है कि भगवानने समस्त वस्तुओंको परिपूर्णरूपसे जान लिया और कुछ बाकी नहीं रहा है; यह स्पष्ट करनेके लिए श्री प्रवचनसार गाथा ३२ मे स्वयं श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते है कि 'केवलज्ञानी निरवशेषरूपसे सबको (सम्पूर्ण आत्माको, सर्व ज्ञेयोंको) सर्व ओरसे देखते जानते है" तथा भावार्थमे लिखा है कि 'उन्हें कुछ भी जानना शेष नहीं रहता"।

२८५—श्री प्रवचनसार गाथा १६८ की टीकामे 'अन्त' शब्दका अर्थ भगवान अमृतचन्द्राचार्यने—"ज्ञानसे भरपूर होनेके लिए ऐसा किया है" इससे सिद्ध हुआ कि यहां 'अन्त' शब्दका अर्थ 'ज्ञानसे भरपूर' होता है।

२८६—अब विचारिये—भगवान् सर्वज्ञके ज्ञानमे समस्त द्रव्योंका आदि अंत दिखाते हो तो सब द्रव्योको 'अनादि अनन्त' श्री प्रवचनसार गाथा ६८ मे क्यो कहा? श्रुतज्ञानमे अनादि अनन्त और केवलज्ञानमे सादिसात भासित है ऐसा माननेमे बडा विरोध आता है।

२८७—जो जीवोकी सख्या भगवानने बतलाई वह उसके ज्ञानमे न हो तो कहांसे और कैसे बताई? 'संख्या' करणानुयोगका विषय है और

करणानुयोगमे जीवादि द्रव्योका प्रमाण (परिमाण) निरूपण किया है वह निश्चय वर्णन है, इसलिए पृथक्-पृथक् इतने ही द्रव्य हैं सा यथासम्भव जानना चाहिए।

(देखिये मोक्षमार्ग प्रकाशक हिन्दी अध्याय आठवाँ, पृष्ठ ४०४)

२८८—'संख्या'का विषय, केवलज्ञानका विषय नही हो सकता ऐसा मानकर अनादि, अनन्त, अनन्तानन्त आदि शब्दोका क्या अर्थ है ऐसा प्रश्न करके, प्रश्नकार छः द्रव्योंका काल अनादिअनन्त है ऐसा नहीं मानते हैं और अनन्तानन्त संख्याको भी नहीं मानते इसलिये सर्वज्ञके स्वरूपकी उनकी सब मान्यता विपरीत है। वे वास्तवमे अरहतको ही नही मानते हैं। उनके मतानुसार श्रुतज्ञान और केवलज्ञानके भावभासनमे विरुद्धता भासती है अर्थात् केवलज्ञानके अनुसार भावश्रुतज्ञान नही है, केवलज्ञानके अनुसार आगम नही है, ऐसा वे मानते हैं।

२८९—श्री पचास्तिकाय गाथा ३ मे श्री कुन्दकुन्दाचार्यने शब्दरूप, अर्थरूप, ज्ञानरूप तीन प्रकारका 'समय' बतलाया है उसको वे नहीं मानते हैं। 'ज्ञानसमयकी प्रसिद्धिके लिये शब्दसमयके सम्बन्धसे अर्थसमय कहनेमें आता है' ऐसा भी वे नहीं मानते।

२९०—इसप्रकार वे भगवानकी आज्ञानुसार जीव-अजीवादि किसी भी द्रव्योको नही मानते यह उनकी जीव-अजीव तत्त्वकी भूल है। जो जीवकी तथा अजीवकी जाति न जाने, आपा परको न पहिचाने तो पर विषै रागादिक कैसे न करे ? रागादिकको न पहिचाने तो तिनका त्याग कैसे किया चाहै सो रागादिक ही आस्रव है। रागादिकका फल बुरा न जानै तो काहेको रागादिक छोड्या चाहे। सो रागादिकका फल सो ही बन्ध है। बहुरि रागादिक रहित परिणामको पहिचाने तो तिसरूप हुआ चाहे; सो रागादि

रहित परिणामका नाम ही सवर है । पूर्व ससार अवस्थाको निमित्त कारण कर्म है ताकी हानि सोई निर्जरा है । बहुरि ससार अवस्थाका अभावको न पहिचाने, तो सवर-निर्जरा रूप काहेको प्रवर्ते । ससार अवस्थाका अभाव सो ही मोक्ष है, तातै सातो तत्त्वनिका श्रद्धान भये ही रागादिक छोडी शुद्धभाव होनेकी भावना ऊपजै है । जो इन विषै एक भी तत्त्वका श्रद्धान न होय तो ऐसी भावना न ऊपजै ।

(देखिए मोक्षमार्ग प्रकाशक अ० ६ पृ० ४७२)

जिसको जीव अजीवकी भूल है उसके सब तत्त्वोकी भूल होती ही है ।

प्रश्नका समग्र जवाब

२६१–अ—समस्त द्रव्य स्वभाव सिद्ध होनेसे सर्वकालीन हैं इसलिये वह अनादि–अनन्त हैं ऐसा सर्वज्ञ जानते हैं, (देखिये भूमिका, तथा श्री प्रवचनसार गाथा ६५से ६८ टीका तथा **श्री गोम्मटसार गाथा ५८१ टीका पाना २७६, २७७ (अगाससे प्रकाशित), श्री तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र ४ टीका श्री सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृ० २०८,** उपसंहारमे भी इसका स्पष्टीकरण है ।

उसका आदि अन्त है ही नही तो कहाँसे सर्वज्ञ जाने ? द्रव्योका आदि अन्त माननेवाला परममयो है, श्री प्रवचनसार गाथा ६८, श्री अकलकदेव राजवार्तिक और श्रीधवलमे ऐसा कहा है, (देखिये भूमिका, प्रश्नोका विवरण, तथा उपसहार) ईश्वरवादी वस्तुको आदि अन्त मानते हैं ।

ब–संख्या दो प्रकारकी होती है (१) मर्यादित (२) अमर्यादित दोनो सख्याओको भगवान जैसा हो वैसा जानते हैं, सख्या कहनेमे मात्र मर्यादितपना आजावे ऐसी बात नही है । इस विषयमे त्रिलोकसार गाथा ६६ मे निम्नप्रकार कहते हैं—

त्रिलोकसार गाथा ६६ पृ० ३२

तितिह जहण्णाणत वग्गसलादल छिदी सगादिपद ।
जीवो पोग्गल कालो सेढीआगास तप्पदर ॥६६॥

त्रिविध जघन्यानत वर्गशलादलच्छेदा. स्वकादिपदम् ।
जीव. पुद्गल. काल. श्रेण्याकाश तत्प्रतरम् ॥६६॥

अर्थ—इससे असख्यात स्थान जाकर जघन्य परीतानन्तका वर्ग-शलाका राशि उपजते हैं इससे असख्यात स्थान जाकर उसका अर्द्धच्छेद राशि उपजते हैं, इससे असख्यात स्थान जाकर उसका प्रथम मूल उपजते हैं। उसका एकवार वर्ग हुवे जघन्य परीतानन्त होता है, इसलिये असख्यात स्थान जाकर जघन्य युक्तानन्त उपजते हैं, जिससे देयराशिके ऊपर विरलन राशिके अर्द्धच्छेद प्रमाण वर्ग-स्थान हुवे विवक्षित राशि होती है, इसलिए यहाँ देयराशि जघन्य-परीतानन्त है उसके ऊपर विरलन राशि जघन्य परीतानन्त उसके अर्द्धच्छेद असख्यात है, इसलिए इतने ही वर्गस्थान हुवे जघन्य युक्ता-नन्त होते हैं। यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार वर्ग शलादिकका निषेध जानना और इस जघन्य युक्तानन्तका एक बार वर्ग हुवे जघन्य अनन्तानन्त होते है, और इससे अनन्तस्थान जाकर जीवराशि प्रमाणकी वर्गशलाका होते है, इससे अनन्तस्थान जाकर उसीके अर्द्धच्छेद होते हैं, इससे अनन्तस्थान जाकर उसीका प्रथम मूल होते हैं, उसका एकवार वर्ग हुए जीवराशिका प्रमाण उपजते हैं। इस गाथा विषय वर्गशलाकादिकोंनिका उपलक्षण कर कथन हैं, इससे इस जीवराशिसे पर पुद्गलादिक जो जो राशि कहते हैं उनका जीवराशि विषय जैसे कहा वैसे वर्गशलाकादि जानना और इस जीवराशिसे अनन्तस्थान जाकर पुद्गलराशिका प्रमाण उपजते हैं।

क—'अनादि अनंत' काल सूचक है, संख्या सूचक नहीं है [इसके अर्थ के लिए देखिए श्रीप्रवचनसार गाथा ६८की टीका तथा श्री गोमट्ट-

सार जीवकाण्ड गाथा ५८१ के भावार्थमे पृ० २७६, २७७ श्री रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला प्रकाशित है यह गाथा उपसंहारमे दी गई है। स्याद्वाके सम्बन्धमे विशेष वर्णन उपसंहारमे किया गया है]।

डी-श्रुतज्ञान और केवलज्ञानके स्वरूपके विषयमें श्री समयसार, श्री पंचास्तिकाय, श्री प्रवचनसार, श्री नियमसार, श्री आप्तमीमांसा, श्री गोमट्टसारके आधार ऊपर देनेमे आये है। इनसे सिद्ध होता है कि वस्तुका स्वरूप (अर्थ समय) श्रुतज्ञान और केवलज्ञान (ज्ञान समय) आगम (शब्द समय) सब एक जैसा ही होता है श्रुतज्ञान-केवलज्ञान अनुसार ही है। (क्रमशः)

सैद्धान्तिक चर्चा शुद्धि पत्र

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
८५	१६	भनवान	भगवान
१०६	८	ज्ञेयके	ज्ञेयको
१०८	७	मानने	माननेसे
१०९	२	आत्मा सचेतन	आत्मसचेतन
१११	६	८८	८८,
११७	७	३५१	३११,
११८	११	ता	तो
१२९	२५	केवलज्ञान विषय	केवलज्ञानमे
१३१	१	है।	है,
१३१	१	उसको	उसकी
१३२	६	वुवन्ति	ब्रुवन्ति
१४१	अंतिम	प्रकारस	प्रकारसे
१५१	१७	पदा	पैदा